।।ओ३म्।।

सांख्यदर्शनम्
ब्रह्ममुनिभाष्योपेतम्
तत्र
तृतीयोऽध्यायः



भाष्य विस्तार - पूज्य स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक
(निदेशक- दर्शन योग महाविद्यालय)

[यह केवल निजी प्रगोग हेतु, **अप्रकाशित**, **संशोधन अपेक्षित** संग्रह है।]

तृतीयोऽध्यायः

अविशेषाद् विशेषारम्भः ।।१।।

(अविशेषात्) सामान्यधर्मवतः-स्थूलं प्रति कारणतया सामान्यं सम्बन्धं प्रवर्तयतो महदादितन्मात्रपर्यन्तगणात् (विशेषारम्भः) विशेषाणां विशिष्टरूपेण व्यक्तानां पृथिव्यादीनां स्थूलभूतानामुत्पादो भवति ।।१।।

तस्माच्छरीरस्य ।।२।।

(तस्मात्) पञ्चस्थूलभूतगणात् (शरीरस्य) स्थूलशरीरस्योत्पादो भवति ।।२।।

तद्बीजात् संसृतिः ।।३।।

(तद्बीजात्) तस्य शरीरस्य बीजान्महत्तत्त्वादितन्मात्रपर्यन्तादविशेषगणात् साशयाल्लिंगशरीररूपात् (संसृतिः) संसरणं देहाद्-देहान्तरगमनं भवति "योनिकोटिसहस्त्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः ।" (मनु० ६.६३) ।।३।।

कदापर्यन्तं तद्बीजं महत्तत्त्वादिकं प्रवर्तते-इत्याकांक्षायामाह -

---

तृतीयोऽध्यायः

अविशेषाद् विशेषारम्भः ।। १ ।।

सूत्रार्थ= पाँच तन्मात्राओं से पाँच स्थूलभूतों की उत्पत्ति होती है।

[(अविशेषात्) सामान्यधर्मवतः-स्थूलं प्रति कारणतया सामान्यं सम्बन्धं प्रवर्तयतो महदादितन्मात्रपर्यन्तगणात्] जो सामान्य धर्म वाले हैं स्थूल पदार्थों के प्रति कारण के रूप से सामान्य संबंध रखते हुए महत से लेकर तन्मात्रा पर्यंत जो वो पदार्थ थे उनमें से जो स्थूल के प्रति संबंध रखते है वे हैं पाँच उन पाँच में से (तन्मात्राओं) **[(विशेषारम्भः) विशेषाणां विशिष्टरूपेण व्यक्तानां पृथिव्यादीनां स्थूलभूतानामुत्पादो भवति]** जो विशेष रूप से व्यक्त हुए पृथ्वी आदि पाँच स्थूलभूत अच्छी प्रकार प्रकट हुए उनकी उत्पत्ति होती है ।।१।।

तस्माच्छरीरस्य ।। २ ।।

सूत्रार्थ- उन पाँच स्थूल भूतों से स्थूल शरीर की उत्पत्ति होती है।

[(तस्मात्) पञ्चस्थूलभूतगणात् (शरीरस्य) स्थूलशरीरस्योत्पादो भवति] पांचस्थूल भूतों (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश) से यह स्थूल शरीर बना ।। २ ।।

तद्बीजात् संसृतिः ।। ३ ।।

सूत्रार्थ= स्थूल शरीर से भिन्न सूक्ष्म शरीर के माध्यम से जीवात्मा संस्कार सहित एक शरीर से दूसरे शरीर में गमन करता है।

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ।।४।।

(च) अथ च (आविशेषाणाम्) महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्राणां बीजभूतानाम् (प्रवर्तनम्) प्रवृत्तिः स्थूलशरीरनिर्माणाय (आविवेकात्) यावद् विवेको न जायेत तावद् भवति सति विवेके निवृत्तिरित्यर्थः ।।४।।

अथ च -

उपभोगादितरस्य ।।५।।

(इतरस्य) अविशेषेभ्यो महदादिभ्यो लिंगदेहरूपेभ्य इतरस्य विशेषस्य स्थूलशरीरस्य प्रवर्तनं वर्तमानत्वम् (उपभोगात्) उपभोगहेतोर्भवतियावत्तस्योपभोगस्तावदेव स प्रवर्ततेऽवतिष्ठते, किन्तु लिंगदेहस्तु यावद् विवेको न जायेत तावत् तिष्ठत्येव नहि स्थूलशरीरेण नष्टेन सह तस्य विनाशो भवति ।। अपितु -

---

[(तद्बीजात्) तस्य शरीरस्य बीजान्महत्तत्त्वादितन्मात्रपर्यन्तादविशेषगणात् साशयाल्लिंगशरीररूपात्] उस शरीर के बीज से ''महतत्व से लेकर तन्मात्रा पर्यंत'' (ये १८ पदार्थ है इन सबका नाम अविशेष है) इस अविशेष पदार्थ समुदाय से आशय (संस्कार) सहित जो लिंग रूपी बीज (सूक्ष्म शरीर) है उससे **[(संसृतिः) संसरणं देहाद्-देहान्तरगमनं भवति ''योनिकोटिसहस्त्रेषु सृतीश्चास्यान्तरात्मनः]** जीवात्मा जब एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है उसमें यह सूक्ष्म शरीर साथ जाता है यह तब तक आत्मा का साथ नहीं छोडता जब तक आत्मा का मोक्ष न हो जाए अथवा सृष्टि प्रलय न हो जाए''अन्यथा करोड़ों जन्मों तक यही इंद्रियाँ हर जन्म में आत्मा के साथ रहती हैं, स्थूल शरीर बदलते रहेंगे, सूक्ष्म नहीं ।'' **(मनु० ६.६३)** ।।३।।

कदापर्यन्तं तद्बीजं महत्तत्त्वादिकं प्रवर्तते-इत्याकांक्षायामाह - वो जो बीज है महत्त्व आदि सूक्ष्म शरीर है वह कब तक चलता रहेगा, इस आकांक्षा पर कहते हैं-

आविवेकाच्च प्रवर्तनमविशेषाणाम् ।।४।।

सूत्रार्थ= सूक्ष्म शरीरों का देहांतर गमन जब तक विवेक तत्वज्ञान (मोक्ष) न हो जाए तब तक चलता रहेगा।

[(च) अथ च (आविशेषाणाम्) महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्राणां बीजभूतानाम् (प्रवर्तनम्) प्रवृत्तिः स्थूलशरीरनिर्माणाय (आविवेकात्) यावद् विवेको न जायेत तावद् भवति सति विवेके निवृत्तिरित्यर्थः] ये जो महतत्व अहंकार तन्मत्राएं आदि १८ सूक्ष्म पदार्थ है इनका स्थूल शरीर निर्माण के लिए जो प्रवृत्ति है, ''बार-बार जीवात्मा को अगले जन्म में ले जाना'' ये तब तक चलेगा जब तक तत्वज्ञान नहीं होगा तब तक हमें बार-बार अगले जन्म में ले जाते रहेंगे ।।४।।

अथ च -

उपभोगादितरस्य ।।५।।

सम्प्रति परिष्वक्तो * द्वाभ्याम् ।।६ ।।

(सम्प्रति) पूर्वसूत्रतः प्रकृत उपभोगोऽपेक्ष्यते । उपभोगकाले (द्वाभ्यां परिष्वक्तः) स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां परिवृतो भवति जीवात्मा ।।६ ।।

तत्र शरीरयोः -

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न ।।7 ।।

(स्थूलं प्रायशः-मातापितृजम्) स्थूलं शरीरं प्रायशो मातापितृजं भवति प्रायशः कथनेनारम्भसृष्टौ तदप्यमातापितृजमयोनिजं भवति तथा सम्प्रति च स्वेदजोद्भिज्जशरीरं चामातापितृजमयोनिजं भवति हि (इतरत्-न) स्थूलाद्भिन्नं सूक्ष्मशरीरं मातापितृजं न भवति ।।7 ।।

[(इतरस्य) अविशेषेभ्यो महदादिभ्यो लिंगदेहरूपेभ्य इतरस्य विशेषस्य स्थूलशरीरस्य प्रवर्तनं वर्तमानत्वम् (उपभोगात्) उपभोगहेतोर्भवतियावत्तस्योपभोगस्तावदेव स प्रवर्ततेऽवतिष्ठते] महतत्व आदि जो लिंग देह रूपी जो १८ तत्व हैं उनसे जो भिन्न है स्थूल शरीर है उसका जीवित रहना, टिके रहना कब तक होगा जब तक उपभोग (खाना पीना) रहेगा तब तक जीवित रहेगा, **[किन्तु लिंगदेहस्तु यावद् विवेको न जायेत तावत् तिष्ठत्येव नहि स्थूलशरीरेण नष्टेन सह तस्य विनाशो भवति]** स्थूल शरीर तो ७०-८०-१०० वर्षों तक चलता रहेगा जब तक भोजन पानी है, परंतु लिंग शरीर तो जब तक रहेगा जब तक तत्वज्ञान न हो जाए, ये स्थूल शरीर भले ही मर जाए सूक्ष्म शरीर नहीं मरेगा ।।

अपितु -

सम्प्रति परिष्वक्तो * द्वाभ्याम् ।।६ ।।

सूत्रार्थ= उपभोग काल में जीवात्मा स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों से युक्त रहता है ।

[(सम्प्रति) पूर्वसूत्रतः प्रकृत उपभोगोऽपेक्ष्यते] पूर्वसूत्र से जो प्रकरण में बात चल रही है उपभोग की वह यहाँ अपेक्षित है। **[उपभोगकाले (द्वाभ्यां परिष्वक्तः) स्थूलसूक्ष्मशरीराभ्यां परिवृतो भवति जीवात्मा]** उपभोगकाल में स्थूल और सूक्ष्म दोनों शरीरों से जीवात्मा युक्त रहता है।।६ ।।

तत्र शरीरयोः -

मातापितृजं स्थूलं प्रायश इतरन्न ।।७ ।।

सूत्रार्थ= स्थूल शरीर अधिकतर माता-पिता से उत्पन्न होता है, सूक्ष्म शरीर से नहीं।

[(स्थूलं प्रायशः-मातापितृजम्) स्थूलं शरीरं प्रायशो मातापितृजं भवति] स्थूल शरीर जो दिख रहा है प्रायः वह मातापिता से उत्पन्न होता है, **[प्रायशः कथनेनारम्भसृष्टौ तदप्यमातापितृजमयोनिजं भवति]** प्रायशः इसलिए कहा की जब ईश्वर सृष्टि को आरम्भ करता है मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि की उत्पत्ति ''अयोनिजं'' मातापिता से नहीं बनाता धरती के गर्भ से उत्पन्न करता है **[तथा सम्प्रति च स्वेदजोद्भिज्जशरीरं चामातापितृजमयोनिजं भवति हि (इतरत्-न) स्थूलाद्भिन्नं सूक्ष्मशरीरं मातापितृजं न भवति]** वर्तमान में भी बहुत से शरीर एसे हैं जो बिना मातापिता के होते हैं जैसे जुएं-लीख पसीने से पैदा हो जाते हैं, धरती को

तयोः स्थूलसूक्ष्मशरीरयोः कस्य सुखदुःखभोगोपपत्तिरित्युच्यते -

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ।।८।।

(पूर्वोत्पत्तेः-एकस्य भोगात्) पूर्वा सर्गादावुत्पत्तिर्यस्य तथाभूतस्य पूर्वोत्पत्तिमत एकस्य लिंगशरीरस्य भोगात् सुखदुःखभोगसम्भवात् (तत्कार्यत्वम्) सुखदुःखभोग-कार्यत्वं सुखदुःखप्रतीयमानत्वं भवति (इतरस्य न) स्थूलशरीरस्य न भवति, मृतशरीरेऽदर्शनात् ।।८।।

सूक्ष्मशरीरं च -

सप्तदशैकं लिंगम् ।।९।।

अत्र वक्तव्यम् - अनिरुद्धवृत्तौ सूत्रार्थोऽष्टादशपदार्थपरः कृतस्तत्र लिंगशरीरमष्टादशपदार्थकं

फाड़कर वृक्ष-वनस्पति आदि पैदा होते हैं, माता-पिता वाली पद्धति से स्थूल शरीर तो पैदा हो जाता है परंतु सूक्ष्म शरीर बिना मातापिता के सृष्टि के आरंभ में प्रकृति से बनता है ।।७।।

तयोः स्थूलसूक्ष्मशरीरयोः कस्य सुखदुःखभोगोपपत्तिरित्युच्यते- जीवात्मा को जो सुख दुःख की प्राप्ति होती है वह दोनों शरीरों में से कौन सा शरीर कराता है? इसका उत्तर देते हैं-

पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य ।।८।।

सूत्रार्थः-

[(पूर्वोत्पत्तेः-एकस्य भोगात्) पूर्वा सर्गादावुत्पत्तिर्यस्य तथाभूतस्य पूर्वोत्पत्तिमत एकस्य लिंगशरीरस्य भोगात् सुखदुःखभोगसम्भवात् (तत्कार्यत्वम्) सुखदुःखभोग-कार्यत्वं सुखदुःखप्रतीयमानत्वं भवति] जिसकी उत्पत्ति सृष्टि के आरम्भ में हुई थी उस प्रकार का जो पूर्वोक्त उत्पत्तिमत वाला था उस दो में से एक लिंग शरीर का सुख दुःख भोग संभव है, सूक्ष्म शरीर से ही जीवात्मा को दुःख की प्राप्ति होती है उसी में यह क्षमता है **[(इतरस्य न) स्थूलशरीरस्य न भवति, मृतशरीरेऽदर्शनात्]** स्थूल शरीर का यह कार्य नहीं हैं कि जीवात्मा को सुख दुःख की अनुभूति करा सके, मृत शरीर में यह जीवात्मा को सुख दुःख की अनुभूति नहीं करा सकता।।८।।

सूक्ष्मशरीरं च -

सप्तदशैकं लिंगम् ।।९।।

सूत्रार्थ= सत्रह और एक अठारह इस प्रकार का अठारह पदार्थों का समुदाय सूक्ष्म शरीर कहलाता है।

अत्र वक्तव्यम् - यहाँ इस सूत्र के संबंध के कुछ विशेष कहना चाह रहे हैं-

[अनिरुद्धवृत्तौ सूत्रार्थोऽष्टादशपदार्थपरः कृतस्तत्र] अनिरुद्धवृत्ति में सूत्र का अर्थ अठारह पदार्थों के अनुसार किया है (अर्थात उन्होंने ये स्वीकार किया है कि सूक्ष्म शरीर में अठारह पदार्थ होते हैं) **[लिंगशरीरमष्टादशपदार्थकं मतम्]** अपने भाष्य में उन्होने लिंग शरीर के अठारह पदार्थ माने हैं **[''सप्तदश**

मतम् ''सप्तदश च एकञ्च अष्टादश तैः लिंगं सूक्ष्मदेहः उत्पद्यते। बुद्ध्यहंकारमनांसि पञ्च सूक्ष्मभूतानि दश इन्द्रियाणीति'' (अनिरुद्धः) विज्ञानभिक्षुभाष्येऽनिरुद्धकृतोऽर्थः खण्डितः ''न तु सप्तदशमेकञ्चेत्यष्टादशतया व्याख्येयम्'' (विज्ञानभिक्षुः) परन्तु विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि पदार्थास्तु तथैवाष्टादश मताः सूक्ष्मशरीरस्य केवलमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य (''एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश, अहंकारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः।'' (विज्ञानभिक्षुः) किमेतेन कथनप्रकारेण पदार्थास्तु तथैवाष्टादशात्रापि स्वीकृताः परन्तु न सरलसरण्या-सारल्येन नासिका न गृहीता किन्तु वक्रतामवलम्ब्य पृष्ठतो हस्तं परिभ्राम्य गृहीता । अहंकारस्तु सांख्यपरिगणिते पञ्च विंशति गडे स्वतन्त्रः पदार्थः, कुतो हि तस्य बुद्धावन्तर्भावः कल्प्यते। अन्यैः स्वामिहरिप्रसादादिभाष्यकारैरपि तथैवाष्टादशपदार्थान् स्वीकृत्यापि साहंकारा बुद्धिरिति बुद्धावहंकारस्यान्तर्भावं प्रदर्श्यार्थो विहितः। सैषा

च एकञ्च अष्टादश तैः लिंग सूक्ष्मदेहः उत्पद्यते] सत्रह और एक अठारह इस प्रकार से अठारह पदार्थों से सूक्ष्म देह उत्पन्न होता है। **[बुद्ध्यहंकारमनांसि पञ्च सूक्ष्मभूतानि दश इन्द्रियाणीति'']** बुद्धि, अहंकार, मन, पाँच सूक्ष्मभूत और दश इंद्रियाँ इन अठारह पदार्थों का समुदाय सूक्ष्म शरीर हैं **[(अनिरुद्धः) विज्ञानभिक्षुभाष्येऽनिरुद्धकृतोऽर्थः खण्डितः]** विज्ञानभिक्षु भाष्य ने अनिरुद्धवृत्ति का खंडन किया है **[''न तु सप्तदशमेकञ्चेत्यष्टादशतया व्याख्येयम्'']** सत्रह और एक अठारह ऐसी व्याख्या नहीं करनी चाहिए **[(विज्ञानभिक्षुः) परन्तु विज्ञानभिक्षुभाष्येऽपि पदार्थास्तु तथैवाष्टादश मताः सूक्ष्मशरीरस्य]** परंतु विज्ञान भिक्षु भाष्य में भी पदार्थ तो उसी तरह से अठारह ही माने हैं **[केवलमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य]** (अठारह नहीं सत्रह मानिए सूत्र में ''सप्तदश'' शब्द है जब सत्रह गिने तो अहंकार बच गया, तो इसका समाधान किया) अहंकार को बुद्धि के अंतर्गत स्वीकार कर लिया (अहंकार का बुद्धि में अंतर्भाव प्रदर्शित कर दिया) **[''एकादशेन्द्रियाणि पञ्चतन्मात्राणि बुद्धिश्चेति सप्तदश, अहंकारस्य बुद्धावेवान्तर्भावः]** ग्यारह इंद्रियाँ, पाँच तन्मात्राए और बुद्धि ये सत्रह हो गए जो अहंकार था उसको बुद्धि में अंतर्भाव मान लिया।'' **[(विज्ञानभिक्षुः) किमेतेन कथनप्रकारेण पदार्थास्तु तथैवाष्टादशात्रापि स्वीकृताः]** ऐसे कथन से क्या लाभ हुआ जो विज्ञानभिक्षु ने कहा पदार्थ तो अनिरुद्ध के तरह इनहोने भी तो अठारह ही माने हैं। **[परन्तु न सरलसरण्या-सारल्येन नासिका न गृहीता किन्तु वक्रतामवलम्ब्य पृष्ठतो हस्तं परिभ्राम्य गृहीता]** अनिरुद्ध ने सीधे सीधे अठारह पदार्थ माने इनहोने घूमा फिरा के अठारह मान लिए, नाक सीधे सीधे पकड़ो अथवा पीछे से हाथ घूमा के पकड़ो बात बराबर है। **[अहंकारस्तु सांख्यपरिगणिते पञ्च विंशति गडे स्वतन्त्रः पदार्थः, कुतो हि तस्य बुद्धावन्तर्भावः कल्प्यते]** अहंकार तो सांख्य में जो पच्चीश पदार्थ बताए है उनमें स्वतंत्र पदार्थ है उसका बुद्धि में अंतर्भाव कैसे हो जाएगा? (बकरी अलग पशु है गधा अलग पशु है, बकरी में गधे का अंतर्भाव कैसे हो जाएगा)। **[अन्यैः स्वामिहरिप्रसादादिभाष्यकारैरपि तथैवाष्टादशपदार्थान् स्वीकृत्यापि साहंकारा बुद्धिरिति बुद्धावहंकारस्यान्तर्भावं प्रदर्श्यार्थो विहितः]** अन्य जो स्वामी हरिप्रसाद आदि भाष्यकार हैं उन्होने भी अठारह पदार्थ स्वीकार किए हैं अहंकार सहित बुद्धि है अहंकार का बुद्धि में अंतर्भाव मान लिया और इस प्रकार से अठारह पदार्थ स्वीकार कर लिए । **[सैषा कथनप्रक्रिया सांख्यपरिगणनप्रकारात् सूत्रपदेभ्यश्च विरुद्धाऽस्ति]** इस प्रकार से जो कथन कि प्रक्रिया है जैसा ये सब मानते है, यह कथन सांख्य कि गणना प्रकार

कथनप्रक्रिया सांख्यपरिगणनप्रकारात् सूत्रपदेभ्यश्च विरुद्धाऽस्ति। अथ च विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रस्थम् ''एकम्'' इति पदमाश्रित्य सर्वेषां लिंगशरीरमेकमित्यपि प्रतिपादितं तदपि न युक्तं यत उक्तं हि चतुर्थे सूत्रे 'आविवेकाच्च प्रवनर्तमविशेषाणाम्' (४) विवेकपर्यन्तमेव लिंगशरीरं तिष्ठति येन पुनर्जन्मार्थं देहान्तरे जीवात्मा संसरति तथा च वेदान्तदर्शनेऽपि ''तदापीतेः संसारव्यपदेशात्'' (वेदा० ४.२.८) प्रत्येकस्य सूक्ष्मशरीरं पृथक् तच्च यावन्मोक्षो न जायते तावत्प्रवर्तते। अस्तु। अत्र सूत्रेऽष्टादशपदार्थास्तु सर्वैरपि भाष्यकारैर्लिंगशरीरस्याभिमताः, सप्तदशत्वं कथनमात्रमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य । तस्मात्सारल्यमवलम्ब्य सूत्रार्थेन भवितव्यमित्येवास्माकमभीष्टं तथैव मत्वेदानीमर्थोविधीयते -

(सप्तदश-एकं लिंगम्) पञ्च तन्मात्राणि मनःसहितान्येकदाशेन्द्रियाण्यहंकारश्च सप्तदश तथैकं लिंगं महत्तत्त्वं बुद्धिरित्यर्थः । लिंगशब्देन महत्तत्त्वमभिप्रेयते ''विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि

प्रक्रिया और सूत्र से भी विरुद्ध है ।[**अथ च विज्ञानभिक्षुभाष्ये सूत्रस्थम् ''एकम्'' इति पदमाश्रित्य सर्वेषां लिंगशरीरमेकमित्यपि प्रतिपादितं तदपि न युक्तं**] और उनके भाष्य में एक गलती और है सूत्र में जो शब्द है ''एकं'' इस एकं शब्द को आधार बनाकर उन्होने इस बात की स्थापना की है अपने भाष्य में कि सभी जीवात्माओं का सूक्ष्म शरीर एक ही है [**यत उक्तं हि चतुर्थे सूत्रे 'आविवेकाच्च प्रवनर्तमविशेषाणाम्''**] क्योंकि चौथे सूत्र में ये बात कही जा चुकी है ''सूक्ष्म शरीरों का प्रवर्तन अर्थात देहांतर्गमन जबतक होता तबतक मोक्ष अथवा प्रलय न हो जाए'' [(४) **विवेकपर्यन्तमेव लिंगशरीरं तिष्ठति येन पुनर्जन्मार्थं देहान्तरे जीवात्मा संसरति**] विवेक पर्यंत ही जब तक तत्वज्ञान न हो जाए तब तक ही लिंग शरीर रहता है जिससे जीवात्मा अगले अगले शरीर में गमन करता रहता है [**तथा च वेदान्तदर्शनेऽपि ''तदापीतेः संसारव्यपदेशात्''**] और ऐसा ही वेदान्त दर्शन में भी बताया गया है-वो जो सूक्ष्म शरीर है मोक्ष होने तक हर जन्म में चलता रहता है और जब मोक्ष हो जाएगा तब छुट जाएगा [**(वेदा० ४.२.८) प्रत्येकस्य सूक्ष्मशरीरं पृथक तच्च यावन्मोक्षो न जायते तावत्प्रवर्तते**] इस सूत्र में बताया गया है कि प्रत्येक जीवात्मा का सूक्ष्म शरीर अलग अलग है जब तक मोक्ष नहीं हो जाएगा तब तक वो अगले अगले जन्म तक चलता रहेगा। [**अस्तु। अत्र सूत्रेऽष्टादशपदार्थास्तु सर्वैरपि भाष्यकारैर्लिंगशरीरस्याभिमताः**] अब यहाँ सूत्र क व्याख्या में अठारह पदार्थ तो सभी भाष्यकारों के द्वारा सूक्षम शरीर के स्वीकार किए गए हैं, [**सप्तदशत्वं कथनमात्रमहंकारस्य बुद्धावन्तर्भावं प्रदर्श्य**] सत्रह कहना तो कथनमात्र ही है अहंकार को बुद्धि के अंतर्गत मानना। [**तस्मात्सारल्यमवलम्ब्य सूत्रार्थेन भवितव्यमित्येवास्माकमभीष्टं**] इसलिए हमको तो यह अभीष्ट है कि सरलता के आधार पर सूत्र का अर्थ होना चाहिए [**तथैव मत्वेदानीमर्थोविधीयते -**] सरलता के आधार पर ही सूत्र का अर्था होना चाहिए ऐसा मानकर के हम अर्थ करते है-

[**(सप्तदश-एकं लिंगम्) पञ्च तन्मात्राणि मनःसहितान्येकदाशेन्द्रियाण्यहंकारश्च सप्तदश तथैकं लिंगं महत्तत्त्वं बुद्धिरित्यर्थः**] सूत्रकार ने जैसे शब्द रखे हैं ''सप्तदश-एकं'' सत्रह और एक लिंग तो सत्रह में तो पाँच तन्मात्राए, मन सहित एकादश इंद्रियाँ, अहंकार और एक अठारहवां पदार्थ महतत्व हैं जिसे लिंग मात्र कहते हैं इस प्रकार से अठारह पदार्थ हैं। [**लिंगशब्देन महत्तत्त्वमभिप्रेयते**] सूत्र के इस लिंग शब्द से महतत्व अभिप्रेत हैं इसमें प्रमाण दिया- [**''विशेषाविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणिलिंगमात्रं महत्तत्त्वम्'' (योग०**

गुणपर्वाणिलिंगमात्रं महत्तत्त्वम्'' (योग० २.१९ व्यासः) कतं हि पृथक्-पृथक निर्देशः 'सप्तदश' पुनः 'एकं लिंगम्' कथं न 'अष्टादश' इत्येवोच्येत । तत्र लिंगस्य महत्तत्त्वस्य प्राधान्यप्रदर्शनाय, यदिदमत्र सूक्ष्मशरीरे प्रमुखं लिंगं महत्तत्त्वं तदेव प्रमुखं लिंगमाश्रित्य हीदं लिंगशरीरमुच्यते । यथा हि पञ्चभूतेषु सर्वस्थूला पृथिवी प्राधान्येन तस्मात् पञ्चभूतनिमित्तकमपि शरीरं स्थूलशरीरं पार्थिवमुच्यते तत्र पृथिवीप्राधान्यात् । तथैवात्र 'एकं लिंगम्' इति प्राधान्यमवलम्ब्य पृथक निर्देशादिदं लिंगशरीरम् यत्खलु वचनमुद्धृतं विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः प्रयुज्यते । ससप्तदशकेनापि राशिना युज्यते च सः ।।'' कुत्रत्यमिदं वचनमिति तु न सूचितं तत्प्रामाणिकशास्त्रस्याप्रामाणिकस्येति न ज्ञायते । तथापि तथाभूतग्रन्थस्यापि वचनेऽस्मिन् न विज्ञानभिक्षुभाष्य पुष्टिर्भवति यथा विज्ञानभिक्षुणा सूत्रार्थमन्यथा कुर्वताऽपि संगृहीता ह्यष्टादश पदार्था लिंगशरीरस्य तथैवात्र वचनेऽपि प्रतिभाति पदार्थाष्टादशत्वम् ''ससप्तदशकेन राशिना कर्मात्मा पुरुषः'' अत्र, ससप्तदशको राशिः, पुनस्तेन सह कर्मात्मा पुरुषः- अहंकारयुक्तो जीव उक्तः । ''निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहंकारधर्मा ह्येते'' (सांख्य० ६.६२) अहंकारः प्रक्रियते पुनः ''विशिष्टस्य जीवत्वम्...'' (सांख्य० ६.६३) अहंकारविशिष्ट आत्मा जीव पश्चात्

२.१९ व्यासः) कतं हि पृथक्-पृथक निर्देशः 'सप्तदश' पुनः 'एकं लिंगम्' कथं न 'अष्टादश' इत्येवोच्येत] एक शंका उठाई है-ऐसा अलग अलग कथन क्यों किया? सत्रह और एक अठारह । सीधा ही क्यों नहीं कहा कि अठारह पदार्थ हैं सूक्ष्म शरीर में- इसका उत्तर देते हैं -। **[तत्र लिंगस्य महत्तत्त्वस्य प्राधान्यप्रदर्शनाय]** सूक्ष्म शरीर में (तेरह करणों में) मुख्यता बुद्धि की है इसलिए प्रधानता के कारण अलग से कह दिया, **[यदिदमत्र सूक्ष्मशरीरे प्रमुखं लिंगं महत्तत्त्वं तदेव प्रमुखं लिंगमाश्रित्य हीदं लिंगशरीरमुच्यते]** जो इस सूक्ष्म शरीर में मुख्य पदार्थ है लिंग अर्थात महतत्व उसी लिंग (बुद्धि) को आश्रित करके इसको लिंग शरीर कहा जाता है। **[यथा हि पञ्चभूतेषु सर्वस्थूला पृथिवी प्राधान्येन तस्मात् पञ्चभूतनिमित्तकमपि शरीरं स्थूलशरीरं पार्थिवमुच्यते तत्र पृथिवीप्राधान्यात्]** जैसे पाँच स्थूलभूतों में स्थूल पदार्थ पृथ्वी है और ये जो स्थूल शरीर बना है यह पाँच स्थूल भूतों से मिलकर बना है, परंतु इसमें प्रधानता पृथ्वी की है इसलिए इसे पार्थिव कहा जाता है। **[तथैवात्र 'एकं लिंगम्' इति प्राधान्यमवलम्ब्य पृथक निर्देशादिदं लिंगशरीरम्]** उसी प्रकार से यहाँ भी ''एकं लिंगम'' प्रधानता का आधार लेकर के जो अलग कथन किया है कि ''यह लिंग शरीर है''। **[यत्खलु वचनमुद्धृतं विज्ञानभिक्षुभाष्ये ''कर्मात्मा पुरुषो योऽसौ बन्धमोक्षैः प्रयुज्यते। ससप्तदशकेनापि राशिना युज्यते च सः।।'' कुत्रत्यमिदं वचनमिति तु न सूचितं तत्प्रामाणिकशास्त्रस्याप्रामाणिकस्येति न ज्ञायते]** विज्ञानभिक्षु भाष्य में एक वचन इस विषय में उद्धृत किया है ''जो कर्म करने वाला पुरुष है वह बंधन और मुक्ति से युक्त होता रहता है'' वह जीवात्मा सत्रह पदार्थों के समुदाय सहित उन सूक्ष्म शरीरों से युक्त होता है'' ये जो वाक्य है वह किस प्रामाणिक शास्त्र का है इसकी सूचना नहीं दी। **[तथापि तथाभूतग्रन्थस्यापि वचनेऽस्मिन् न विज्ञानभिक्षुभाष्य पुष्टिर्भवति]** जिस भी ग्रंथ का प्रमाण उन्होंने दिया उस वचन से विज्ञानभिक्षु भाष्य की पुष्टि तो यहाँ भी नहीं होती **यथा विज्ञानभिक्षुणा सूत्रार्थमन्यथा कुर्वताऽपि संगृहीता ह्यष्टादश पदार्था लिंगशरीरस्य** जैसे विज्ञानभिक्षु के द्वारा गलत सूत्रार्थ करते हुए भी उन्होंने अठारह पदार्थ तो लिंग शरीर के स्वीकार किए ही थे **[तथैवात्र वचनेऽपि प्रतिभाति**

''अहंकारकर्त्राधीना कार्यसिद्धिः...'' (सांख्य० ६.६४) कर्तृत्वमहंकारस्य यद्वाऽहध्कारविशिष्टस्यात्मनो भवति तथैवात्रोद्धतवचनेऽपि 'कर्मात्मा पुरुषः' अहंकारो निर्दिष्टः ससप्तदशकेन राशिना सह संगतस्तदाष्टादशत्वं तु जातमेव लिंगदेहपदार्थानाम् ।।९।।

ननु लिंगशरीरं तु सर्वेषां समानं पुर्नव्यक्तिभेदो देवमनुष्यतिर्यग्भेदः कथमित्याकांक्षामुच्यते -

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ।।१०।।

(व्यक्तिभेदः) तथाविधो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरभेदो देवमनुष्यतिर्यग्देहभेदः (कर्मविशेषात्) कर्मविशेषाददृष्टविशेषाद् भवति ।।१०।।

ननु कर्मविशेषो धर्माधर्मरूपादृष्टविशेषस्तु खल्वात्मानुवर्ती पुनः कथं तेन व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे सम्भवति । अत्रोच्यते -

तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ।।११।।

पदार्थाष्टादशत्वम्] उसी प्रकार से इस वचन में भी अठारह पदार्थ होना प्रतीत होता है [''**ससप्तदशकेन राशिना कर्मात्मा पुरुषः**''] ये श्लोक के शब्द है कि ''सत्रह पदार्थों के साथ कर्म करने वाला पुरुष'' तो पुरुष बिना अहंकार के कर्म तो कर ही नहीं सकता ? [**अत्र, ससप्तदशको राशिः, पुनस्तेन सह कर्मात्मा पुरुषः- अहंकारयुक्तो जीव उक्तः**] इस श्लोक में भी ''सत्रह पदार्थो का समुदाय'' उस सत्रह से सहित कर्मात्मा पुरुष में अहंकार युक्त जीवात्मा होता है। [''**निर्गुणत्वात् तदसम्भवादहंकारधर्मा ह्येते**'' (**सांख्य० ६.६२**) **अहंकारः प्रक्रियते पुनः** ''**विशिष्टस्य जीवत्वम्...**''] इस सूत्र में अहंकार का प्रसंग चल रहा है बैठना उठना खाना पीना इत्यादि ये सब अहंकार के धर्म हैं इनके विना इसकी सिद्धि नहीं हो पाएगी, इस सूत्र से अगले ही सूत्र में कहा - ''जो अहंकार से युक्त होगा वही जीव है'' [(**सांख्य० ६.६३**) **अहंकारविशिष्ट आत्मा जीव पश्चात्** ''**अहंकारकर्त्राधीना कार्यसिद्धिः...**''] अहंकार रूप कर्ता के अधीन सब कार्यो की सिद्धि है (**सांख्य० ६.६४**) **कर्तृत्वमहंकारस्य यद्वाऽहध्कारविशिष्टस्यात्मनो भवति** जो कर्तित्व है वह अहंकार से युक्त जीवात्मा का है अकेला जीवात्मा कर्म नहीं कर सकता जब ये कहाँ जाए ''कर्मात्मा पुरुषः'' इसमें स्वतः ही अहंकार का ग्रहण हो जाता है [**तथैवात्रोद्धतवचनेऽपि 'कर्मात्मा पुरुषः' अहंकारो निर्दिष्टः ससप्तदशकेन राशिना सह संगतस्तदाष्टादशत्वं तु जातमेव लिंगदेहपदार्थानाम्**] इसी प्रकार से उस उद्धत वचन में भी ''कर्मात्मा पुरुष'' ये शब्द आए थे, इन शब्दों से अहंकार का निर्देश है और सत्रह सहित पदार्थों के समुदाय से वो जुड जाता है, तो सत्रह और एक अहंकार अठारह हो गए, इस प्रकार से लिंग देह के पदार्थों की संख्या अठारह तो हो ही गयी- ।।९।।

[**ननु लिंगशरीरं तु सर्वेषां समानं पुर्नव्यक्तिभेदो देवमनुष्यतिर्यग्भेदः कथमित्याकांक्षामुच्यते -**] सूक्ष्म शरीर तो सबका एक जैसा है, फिर जो स्थूल शरीर (व्यक्तिभेद) का भेद है कोई देव है कोई मनुष्य कोई पशु कोई पक्षी आदि है, ये किस आधार पर भेद है् इस आकांक्षा पर कहते हैं-

व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात् ।।१०।।

सूत्रार्थ= सब जीवात्माओं के कर्मों में भिन्नता के कारण उनके स्थूल शरीर की भिन्नता होती है।

(तदधिष्ठानाश्रये देहे) भवतु कर्मण आत्मानुवर्तित्वं किन्तु तस्यात्मनोऽधिष्ठानं लिंगशरीरं लिंगशरीरस्याश्रयः स्थूलदेहस्तत्र स्थूलदेहे (तद्वादात् तद्वादः) लिंगस्य देहवादात् तस्य स्थूलदेहस्य तद्वादो व्यक्तिदेहवादोऽतस्तस्य व्यक्तिभेदः ।।११।।

भवतु तर्हि लिंगशरीरे हि धर्माधर्मकर्मरूपादृष्टस्य फलं किमर्थो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे । अत्रोच्यते

न स्वातन्त्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ।।१२।।

(स्वातन्त्र्यात्-न तदृते) स्थूलशरीरेण विना स्वातन्त्रयात् खलु लिंगशरीरेऽदृष्टस्य फलनिष्पत्तिर्न भवति (छायावत्-चित्रवत्-च) यथा छाया चित्रं वाऽऽश्रयेण विना नावतिष्ठते, तस्मात् स्थूल शरीरे ह्यदृष्टवशाद् व्यक्तिभेदेन भाव्यम् ।।१२।।

ननु लिंगशरीरं न चेतनं किन्तु जडमस्ति पुनर्जडस्यापि जडमाश्रयोऽदृष्टफलायेति कथं युज्यते ।

[(व्यक्तिभेदः) तथाविधो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरभेदो देवमनुष्यतिर्यग्देहभेदः (कर्मविशेषात्) कर्मविशेषाददृष्टविशेषाद् भवति] सूक्ष्म शरीर सबका एक समान होते हुए भी स्थूल शरीर में जो भिन्नता है देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि ये सब कर्मों की भिन्नता के कारण से है ।।१०।।

[ननु कर्मविशेषो धर्माधर्मरूपादृष्टविशेषस्तु खल्वात्मानुवर्ती पुनः कथं तेन व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे सम्भवति। अत्रोच्यते -] ये जो भूमिका बनाई है यह सूत्र के साथ मेल नहीं खाती, इसलिए इसे छोड देते हैं।

<u>सूत्र भूमिका स्वामी जी कृत</u> = सूक्ष्म शरीर को शरीर (देह) नाम से क्यो बोला जाता है? इसका उत्तर दिया-

तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः ।।११।।

सूत्रार्थ= उस आत्मा के अधिष्ठान (सूक्ष्म शरीर) के आश्रय देह (स्थूल शरीर) में देह शब्द का प्रयोग होने से उसके सम्बंध द्वारा सूक्ष्म शरीर में देह शब्द का प्रयोग होता है।।११।।

[(तदधिष्ठानाश्रये देहे) भवतु कर्मण आत्मानुवर्तित्वं किन्तु तस्यात्मनोऽधिष्ठानं लिंगशरीरं लिंगशरीरस्याश्रयः स्थूलदेहस्तत्र स्थूलदेहे (तद्वादात् तद्वादः) लिंगस्य देहवादात् तस्य स्थूलदेहस्य तद्वादो व्यक्तिदेहवादोऽतस्तस्य व्यक्तिभेदः] ये भाष्य भी ठीक नहीं है।।११।।

[भवतु तर्हि लिंगशरीरे हि धर्माधर्मकर्मरूपादृष्टस्य फलं किमर्थो व्यक्तिभेदः स्थूलशरीरे । अत्रोच्यते -] पूर्वपक्षी कहता है- सूक्ष्म शरीर के सहाय से धर्माधर्म रूपी कर्मों का सम्पादन हो रहा है जिसका नाम अदृष्ट है उसका फल फिर स्थूल शरीर में परिवर्तन क्यों आ रहा है जबकि कर्म सूक्ष्म शरीर के माध्यम से किए जा रहे हैं? इस पर कहते है-

न स्वातन्त्रयात् तदृते छायावच्चित्रवच्च ।।१२।।

सूत्रार्थ=स्थूल शरीर के बिना केवल सूक्ष्म शरीर से कर्म और कर्म का फल नहीं किया और भोगा जा सकता, जैसे छाया और चित्रा बिना आश्रय के टिक नहीं सकता है।

[(स्वातन्त्रयात्-न तदृते) स्थूलशरीरेण विना स्वातन्त्रयात् खलु लिंगशरीरेऽदृष्टस्य फलनिष्पत्तिर्न भवति] स्थूल शरीर के बिना स्वतन्त्रता से लिंग शरीर में अदृष्ट अर्थात् किए हुए कर्मों के फल की उत्पत्ति नहीं होती **[(छायावत्-चित्रवत्-च) यथा छाया चित्रं वाऽऽश्रयेण विना नावतिष्ठते]** छाया और चित्र बिना

अत्रोच्यते -

मूर्तत्वेऽपि न संघातयोगात् तरणिवत ।।१३।।

(मूर्तत्वेऽपि न) मूर्तत्वमत्र जडत्वं गृह्यते। लिंगशरीरस्य मूर्तत्वे जडत्वेऽपि नादृष्टफलवत्त्वम् (सङ्घातयोगात् तरणिवत्) यथा तरणिः सूर्यप्रकाशः संघातस्य पिण्डीभूतस्य स्थूलस्य योगाद् व्यक्तीभवति तथैव लिंगशरीरं जडं सदपि स्थूलशरीरमपेक्षते तस्माद् व्यक्तिभेदस्तत्रोचितः।।१३।।

लिंगशरीरं किम्परिमाणम् । अत्रोच्यते -

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।।१४।।

(अणुपरिमाणम्) लिंगशरीरं खल्वणुपरिमाणमस्ति। अत्राणुशब्देन विभुत्वनिषेधमात्रं तेन तस्यैकदेशित्वमभिप्रेयते । कुतः (तत्कृतिश्रुतेः) तस्य कार्यत्वश्रवणात्। "एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च" (मुण्ड० २.१.३) ।।१४।।

अन्यो हेतुः -

किसी आधार के नहीं हो सकते, **[तस्मात् स्थूल शरीरे ह्यदृष्टवशाद् व्यक्तिभेदेन भाव्यम्]** वैसे ही बिना स्थूल शरीर के अकेला सूक्ष्म शरीर जीवात्मा को कर्मों का फल नहीं भुगवा सकता ।।१२।।

[ननु लिंगशरीरं न चेतनं किन्तु जडमस्ति पुनर्जडस्यापि जडमाश्रयोऽदृष्टफलायेति कथं युज्यते।] अत्रोच्यते -चलो माना की लिंग शरीर जा् है चेतन नहीं है लेकिन जड़ का आश्रय जड़ हो और वह अदृष्ट कर्मों का फल भुगवाने के लिए है यह कैसे? इस पर कहते हैं-

मूर्तत्वेऽपि न संघातयोगात् तरणिवत ।।१३।।

सूत्रार्थ=लिंग शरीर के जड़ होने पर भी स्थूल शरीर के बिना लिंग शरीर अकेला कर्म फल नहीं भुगवा सकेगा, सूर्य प्रकाश के समान।

[(मूर्तत्वेऽपि न) मूर्तत्वमत्र जडत्वं गृह्यते] इस सूत्र में मूर्त जो शब्द है इसका अर्थ लेंगे जड़। **[लिंगशरीरस्य मूर्तत्वे जडत्वेऽपि नादृष्टफलवत्त्वम्]** लिंग शरीर अर्थात सूक्ष्म शरीर जा् होने पर भी वह अदृष्ट फल नहीं दिला पाएगा **[(संघातयोगात् तरणिवत्) यथा तरणिः सूर्यप्रकाशः संघातस्य पिण्डीभूतस्य स्थूलस्य योगाद् व्यक्ती भवति तथैव लिंगशरीरं जडं सदपि स्थूलशरीरमपेक्षते तस्माद् व्यक्तिभेदस्तत्रोचितः]** जैसे सूर्य की किरणे (प्रकाश) किसी संघात का पिंडीभूत दीवार आदि के योग से प्रकट होता है उसी प्रकार से लिंग शरीर भी जड होता हुआ स्थूल शरीर की जड पदार्थ अपेक्षा करता है।।१३।।

[लिंगशरीरं किम्परिमाणम्। अत्रोच्यते -] सूक्ष्म शरीर किस परिमाण वाला है? (परिमाण का अर्थ आकार प्रकार रंग रूप आकृति से नहीं है, फैलाव से है) इस पर कहते हैं -

अणुपरिमाणं तत्कृतिश्रुतेः ।।१४।।

सूत्रार्थः- सूक्ष्म शरीर अत्यंत सूक्ष्म एक देशी है, उसकी उत्पत्ति सुनाई देने से।

तदन्नमयत्व (आदि) श्रुतेश्च ।।१५।।

(तदन्नमयत्वादिश्रुतेः-च) अथ च तस्य लिंगशरीरस्यान्नमयत्वादि विषयिका श्रुतिरस्ति ''अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः तेजोमयोर्वाक्'' (छान्दो० ६.५.४) ।।१५।।

पुरुषार्थं संसृतिर्लिंगानांसूपकारवद् राज्ञः ।।१६।।

(लिंगानां संसृतिः पुरुषार्थम्) लिंगशरीराणां यद्वा लिंगशरीररूपाणां महत्तत्त्वादीनां बुद्ध्यादीनां पञ्चतन्मात्रान्तानां वा देहे संसरणं प्रापणं पुरुषार्थमात्मार्थमस्ति। उक्तं यथा पूर्वमपि ''आत्मार्थत्वात् सृष्टेः महदादिक्रमेण पञ्चतन्मात्रान्तायाः'' (सांख्य०२.११) (राज्ञः सूपकारवत्) यथा राज्ञः सूपकारस्य पाककर्तुः प्रवृत्ती राजार्था भवति ।।१६।।

अथ च -

[**(अणुपरिमाणम्) लिंगशरीरं खल्वणुपरिमाणमस्ति** लिंग शरीर अणु परिमाण वाला है। **अत्राणुशब्देन विभुत्वनिषेधमात्रं तेन तस्यैकदेशित्वमभिप्रेयते**] सूत्र में जो अणु परिमाण शब्द कहा- यहाँ अणु का तात्पर्य विभुत्व का निषेध मात्र है केवल एक देशीय अभिप्रेत है। [**कुतः (तत्कृतिश्रुतेः) तस्य कार्यत्वश्रवणात्**] अणु का अर्थ एक देशीय क्यों लिया जाए? क्योंकि शास्त्रों में बताया है कि जो सूक्ष्म शरीर है वह कार्य है उत्पन्न किया गया है। [**''एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च'' (मुण्ड० २.१.३)**] ।।१४।।

अन्यो हेतुः -

तदन्नमयत्व (आदि) श्रुतेश्च ।।१५।।

सूत्रार्थ= लिंग शरीर के अन्नमय आदि के श्रुति होने से लिंग शरीर अणु परिमाण वाला है।

[**(तदन्नमयत्वादिश्रुतेः-च) अथ च तस्य लिङ्गशरीरस्यान्नमयत्वादि विषयिका श्रुतिरस्ति**] लिंग शरीर के विषय में के ऐसी भी श्रुति है कि वह अन्नमय है [**''अन्नमयं हि सौम्य मनः, आपोमयः प्राणः तेजोमयोर्वाक्'' (छान्दो० ६.५.४)**] एक गुरु जी अपने विद्यार्थी को पढ़ा रहे थे पढ़ाते पढ़ाते कहा - ये जो मन है वह अन्नमय है (मोटी कहावत है- जैसा खाओ अन्न वैसा बने मन) कहने का तात्पर्य है अन्न से मन को शक्ति मिलती है प्राण को जल से शक्ति मिलती है, वाणी को अग्नि से शक्ति मिलती है ।।१५।।

पुरुषार्थं संसृतिर्लिंगानांसूपकारवद् राज्ञः ।।१६।।

सूत्रार्थ=सूक्ष्म शरीरों का देहान्तर गमन जीवात्मा की सेवा के लिए होता है, जैसे राजा के पाचक की प्रवृत्ति राजा के लिए होती है।

[**(लिंगानां संसृतिः पुरुषार्थम्) लिंगशरीराणां यद्वा लिंगशरीररूपाणां महत्तत्त्वादीनां बुद्ध्यादीनां पञ्चतन्मात्रान्तानां वा देहे संसरणं प्रापणं पुरुषार्थमात्मार्थमस्ति**] लिंग शरीरों का अथवा लिंग शरीर रूपी महतत्व (बुद्धि) आदि पाँच तन्मात्राओं तक जो अठारह पदार्थों हैं इन सभी का एक शरीर से दूसरे शरीर में जाना ''प्राप्त कराना'' पहुंचाना ये सब आत्मा के लिए है आत्मा की सेवा के लिए है । **उक्तं यथा पूर्वमपि** जैसा की पहले भी कह चुके हैं [**''आत्मार्थत्वात् सृष्टेः महदादिक्रमेण पञ्चतन्मात्रान्तायाः''**] महदादि क्रम से

पाञ्चभौतिको देहः ।।१७।।

(देहः) मांसादिभिरुपचितो देहः स्थूलदेहः (पाञ्चभौतिकः) पञ्चभिर्भूतैर्निर्वृत्तः सम्पन्नोऽस्ति । स्थूलशरीरं पाञ्चभौतिकम् ।।१७।।

चातुर्भौतिकमित्येके ।।१८।।

(चातुर्भौतिकम्) आकाशमन्तरेण पृथिव्यादिभिश्चतुर्भिर्भूतैर्निर्वृत्तमस्ति स्थूलशरीरम् (इति-एके) इत्थमेके मन्यन्ते ।।१८।।

ऐकभौतिकमित्यपरे ।।१९।।

(ऐकभौतिकम्) स्थूलशरीरमेकेन भूतेन पृथिव्या निर्वृत्तम् (इति अपरे) एवमपरे मन्यन्ते ।।१९।।

देहे चैतन्यविचारः -

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।।२०।।

पाँच तन्मात्राओं तक जो सूक्ष्म शरीर बना था वह आत्मा के उपकरण बनाने के लिए है [**(सांख्य० २.११) (राज्ञः सूपकारवत्) यथा राज्ञः सूपकारस्य पाककर्तुः प्रवृत्ती राजार्था भवति**] इसे समझने के लिए एक दृष्टांत दिया- जैसे कि राजा के रसोईया की प्रवृत्ति राजा के लिए है (राजा का पाचक राजा के लिए भोजन बनाता है) ।।१६।।

अथ च -

पाञ्चभौतिको देहः ।।१७।।

सूत्रार्थ= स्थूल शरीर पृथ्वी आदि पाँच भूतों से बना है।

[**(देहः) मांसादिभिरुपचितो देहः स्थूलदेहः (पाञ्चभौतिकः) पञ्चभिर्भूतैर्निर्वृत्तः सम्पन्नोऽस्ति। स्थूलशरीरं पाञ्चभौतिकम्**] मांसादि से युक्त यह स्थूल देह पाँच महाभूतों से उत्पन्न हुआ है इसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश है इसलिए इसे पंचभौतिक भी कहते हैं ।।१७।।

चातुर्भौतिकमित्येके ।।१८।।

सूत्रार्थ= कुछ आचार्यों की ऐसी मान्यता है कि स्थूल शरीर चार भूतों से बना है।

[**(चातुर्भौतिकम्) आकाशमन्तरेण पृथिव्यादिभिश्चतुर्भिर्भूतैर्निर्वृत्तमस्ति स्थूलशरीरम् (इति-एके) इत्थमेके मन्यन्ते**] आकाश के विना पृथ्वी आदि चार स्थूल भूतों से यह शरीर बना है, ऐसा कुछ और लोग मानते हैं।।१८।।

ऐकभौतिकमित्यपरे ।।१९।।

सूत्रार्थ= कुछ विद्वान स्थूल शरीर को पृथ्वी से बना हुआ मानते हैं।

(चैतन्यं सांसिद्धिकं न) देहे यच्चैतन्यं तत् सांसिद्धिकं स्वाभाविकं देहस्वभावोद्भवं देहप्रकृतिसम्भवं नास्ति देहस्य यानिभूतानि कारणानि तेभ्यो निष्पन्नं नास्ति । यतः (प्रत्येकादृष्टेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक् पृथग्भूते तस्य चैतन्यस्यादृष्टत्वात्, नहि पृथक्-पृथग्भूते चैतन्यं चैतन्यमात्रा त्रोपलभ्यते तत्र तु जडत्वमेवावतिष्ठते ।।२०।।

देहचैतन्ये दोषश्चायं प्रसज्यते -

प्रपञ्चत्वाद्यभावश्च* ।।२१।।

(प्रपञ्चत्वाद्यभावः-च) प्रगताः प्रस्थिताः पञ्च प्राणा यस्माद् देहात् स प्रपञ्चो मृतदेहस्तस्य भावः प्रपञ्चतां मृतत्वं तस्य मृतत्वस्य मरणस्य तथादिना सुषुप्तिमूर्च्छयोरपि ग्रहणम्, मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छानामभावः प्रसज्यते देहस्य चैतन्ये सति यतो देहस्तु मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छासु खल्वपि तिष्ठत्येव

[**(ऐकभौतिकम्) स्थूलशरीरमेकेन भूतेन पृथिव्या निर्वृत्तम् (इति अपरे) एवमपरे मन्यन्ते**] स्थूल शरीर के भूत पृथ्वी तत्व से बना है, ऐसा भी कुछ लोग मानते हैं ।।१९।।

देहे चैतन्यविचारः - शरीर चेतन है या नहीं इस पर विचार करते हैं-

न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः ।।२०।।

सूत्रार्थ= सांसिद्धिक (स्वाभाविक) शरीर में उपलब्ध चेतना शरीर की अपनी नहीं है, किसी भी भूत में चेतनता न दिखायी देने से।

[**(चैतन्यं सांसिद्धिकं न) देहे यच्चैतन्यं तत् सांसिद्धिकं स्वाभाविकं देहस्वभावोद्भवं देहप्रकृतिसम्भवं नास्ति**] देह "शरीर" में जो चेतनता है चलना, फिरना, बोलना आदि यह स्वाभाविक है, यह चेतनता शरीर के स्वभाव से उत्पन्न नहीं हुई चेतना [**देहस्य यानिभूतानि कारणानि तेभ्यो निष्पन्नं नास्ति**] शरीर के उत्पत्ति के जो पाँचभूत कारण है उससे यह चेतना उत्पन्न नहीं हुई । [**यतः (प्रत्येकादृष्टेः) प्रत्येकस्मिन् पृथक् पृथग्भूते तस्य चैत्ल्यस्यादृष्टत्वात्**] क्योंकि प्रत्येक भूत को अलग-अलग परीक्षण करने से उनमें चेतना नहीं पाई गई, [**नहि पृथक्-पृथग्भूते चैतन्यं चैतन्यमात्रा त्रोपलभ्यते तत्र तु जडत्वमेवावतिष्ठते**] अलग अलग करने पर चेतनता नहीं मिली उसे सिद्ध हुआ पांचों भूतों में जड़ता ही है (जिनसे शरीर बना वही जड है तो शरीर चेतन कैसे हो सकता है) ।।२०।।

देहचैतन्ये दोषश्चायं प्रसज्यते - यदि शरीर में चेतना मान लेवें तो यह दोष आएगा-

प्रपञ्चत्वाद्यभावश्च* ।।२१।।

सूत्रार्थ= शरीर की अपनी चेतना मानने पर सुषुप्ति, मूर्छा और मृत्यु नहीं हो पाएगी।

[**(प्रपञ्चत्वाद्यभावः-च) प्रगताः प्रस्थिताः पञ्च प्राणा यस्माद् देहात् स प्रपञ्चो मृतदेहस्तस्य भावः प्रपञ्चतां मृतत्वं तस्य मृतत्वस्य मरणस्य तथादिना सुषुप्तिमूर्च्छयोरपि ग्रहणम्**] प्रपञ्च का अर्थ किया- प्रस्थिता पाँच प्राण जिसमें से निकाल गए = मृत शरीर। अर्थात मृत शरीर में से पाँच प्राण निकाल गए

तदा तद्धर्मेणापि स्थातव्यमेव ।।२१।।

पुनराशङ्क्य समाधत्ते -

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टसौक्ष्म्यात् सांहत्ये तदुद्भवः ।।२२।।

(मदशक्तिवत्-चेत्) न स्याद् देहस्य सांसिद्धिकं स्वाभाविकं चैतन्यं किन्तु मदशक्तिवद् देहे प्रादुर्भूतं भवेत्, यथा सुरायां मदशक्तिः समुद्भवति। मदशक्तिनाशाद् देहस्य मृतत्वादिप्रसंगो भवेदतो न दोष इति चेदुच्चेत तर्हि (सौक्ष्म्यात् प्रत्येकपरिदृष्टे) सौक्ष्म्याद् वैद्यकशास्त्रप्रतिपादितमादकत्वपरीक्षणप्रकारात् सूक्ष्मभावेन सुरायाः प्रत्येकपदार्थगतपरिदृष्टे मदशक्तित्त्वे सति (तदुद्भवः सांहत्ये) तस्याः मदशक्तेरुद्भवो भवति तेषां सुरापदार्थानां सति सम्मेलने। न तथा देहकारणेषु भूतेषु प्रत्येकस्मिन् चैतन्यमुपलभ्यते, दृष्टान्तवैपरीत्याद् देहचैतन्यवादो न युक्तः ।।२२।।

भवतु देहधर्मश्चैतन्यं न, चेतनः खलु पुरुषो देहाद् भिन्नः पुनस्तस्य चेतनस्य देहात् कथं मुक्तिः

ऐसा जो देह है उसे प्रपञ्च देह कहते हैं, प्रपञ्च की भाववाचक संज्ञा है, प्रपंचत्व= मृतत्व। शरीर चेतन हो तो उसमें सुषुप्ति, मूर्छा, मृत्यु नहीं आएगी, **[मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छानामभावः प्रसज्यते देहस्य चैतन्ये सति यतो देहस्तु मृतत्वसुषुप्तिमूर्च्छासु खल्वपि तिष्ठत्येव तदा तद्धर्मेणापि स्थातव्यमेव]** शरीर देह को चेतन्य मान लेने पर न तो मृत्यु आयगी न मूर्छा और न सुषुप्ति आएगी, क्योंकि तीनों अवस्थाओं में शरीर तो रहता ही है चाहे व्यक्ति सो रहा हो मूर्छित हो अथवा मर गया हो, जब शरीर है तो शरीर का धर्म भी तो होना चाहिए?।।२१।।

पुनराशङ्क्य समाधत्ते - पुनः शंका उठाकर समाधान करते है-

मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टसौक्ष्म्यात् सांहत्ये तदुद्भवः ।।२२।।

सूत्रार्थ= यदि पूर्वपक्षी कहे कि- नशे के समान चेतना शरीर की है तो ठीक नहीं, क्योंकि शराब के कारण पदार्थों में थोड़ा थोड़ा नशा होता है, जबकि शरीर के कारण पंचभूतों में थोड़ी भी चेतना नहीं है।

[(मदशक्तिवत्-चेत्) न स्याद् देहस्य सांसिद्धिकं स्वाभाविकं चैतन्यं] पूर्वपक्षी कहता है मान लिया की शरीर की अपनी चेतना नहीं है **[किन्तु मदशक्तिवद् देहे प्रादुर्भूतं भवेत्]** जैसे शराब में नशा आ जाता है वैसे ही शरीर में चेतना आ जाती है, **[यथा सुरायां मदशक्तिः समुद्भवति]** जैसे शराब में नशा उत्पन्न हो जाता है (अंगूर से शराब बनाते हैं, अंगूर में तो नशा नहीं होता लेकिन जब शराब बनाते हैं तो नशा आ जाता है, ऐसे ही शरीर के जो कारण है पाँच महाभूत परंतु जब पांचों को इकट्ठा करेंगे तो चेतना आ जाएगी ऐसा मान लें)। **[मदशक्तिनाशाद् देहस्य मृतत्वादिप्रसंगो भवेदतो न दोष इति चेदुच्चेत तर्हि]** यदि पूर्वपक्षी ऐसा कहे तो- मद शक्ति का नाश होने से देह का मृतत्व आदि प्रसंग भी आ जाएगा, (शराब पीने से नशा आ जाता है कुछ समह बाद नशा उतर जाता है, वैसे ही शरीर में चेतना पैदा हुई थी जब बो हटी तो शरीर में मूर्छा मृत्यु आदि सब होने लगा) फिर इसमें कोई दोष नहीं आता **[(सौक्ष्म्यात् प्रत्येकपरिदृष्टे) सौक्ष्म्याद वैद्यकशास्त्रप्रतिपादितमादकत्वपरीक्षणप्रकारात् सूक्ष्मभावेन सुरायाः प्रत्येकपदार्थगतपरिदृष्टे मदशक्तित्त्वे सति]** सूक्ष्मता से शराब जिन वस्तुओं से बनती है उन सब कारणों का जब वैद्यक शास्त्रों से परीक्षण करते हैं तब पता चलता है की उन कारण द्रव्यों में नशा होता है (यदि मूल कारण द्रव्यों में नशा न हो तो अभाव से भाव की उत्पत्ति वाला दोष आएगा) **[(तदुद्भवः सांहत्ये) तस्याः मदशक्तेरुद्भवो भवति तेषां सुरापदार्थानां**

स्याद् यतो हि लिंगशरीरस्य संसृतिस्तु स्थूलदेहधारणाय प्रक्रमते हि । अत्रोच्यते -

ज्ञानान्मुक्तिः ।।२३।।

(ज्ञानात्-मुक्तिः) ज्ञानात् खलु सर्वप्रक्रमज्ञानाद् विवेकसाक्षात्काराद् भवति मुक्तिः पुरुषस्य चेतनस्य ।।२३।।

अथ च -

बन्धो विपर्ययात् ।।२४।।

(विपर्ययात्-बन्धः) तद्विपरीतादज्ञानात् प्रक्रमस्याविवेकाद् भवति पुरुषस्य चेतनस्य देहे बन्धः ।।२४।।

सति सम्मेलने] ऐसी स्थिति में शराब के जो मूल कारण द्रव्य हैं उनका सम्मेलन (आपस में मिलाने) पर उनमें नशा उत्पन्न हो जाता है ।**[न तथा देहकारणेषु भूतेषु प्रत्येकस्मिन् चैतन्यमुपलभ्यते]** जैसे शराब के अलग अलग कारण द्रव्यों का पता किया उनमें नशा उपलब्ध हो गया, **दृष्टान्तवैपरीत्याद् देहचैतन्यवादो न युक्तः** शरीर के कारण द्रव्यों में चेतना नहीं है इसलिए आपका दृष्टांत विपरीत है।।२२।।

[भवतु देहधर्मश्चैतन्यं न, चेतनः खलु पुरुषो देहाद् भिन्नः पुनस्तस्य चेतनस्य देहात् कथं मुक्तिः स्याद् यतो हि लिंगशरीरस्य संसृतिस्तु स्थूलदेहधारणाय प्रक्रमते हि। अत्रोच्यते -] पूर्वपक्षी कहता है मान लिया कि चेतनता देह का धर्म नहीं है, ये भी मान लिया कि चेतन जीवात्मा देह से भिन्न है, अब जो चेतन जीवात्मा है जो शरीर में बंधा है इसकी मुक्ति कैसे होगी? क्योंकि आपने बताया था लिंग शरीर जो है वह हर जन्म में साथ साथ चलता ही रहता है आत्मा के (इससे छुटकारा कैसे होगा?)। इस पर कहते हैं-

ज्ञानान्मुक्तिः ।।२३।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान से जीवात्मा का मोक्ष होता है।

[(ज्ञानात्-मुक्तिः) ज्ञानात् खलु सर्वप्रक्रमज्ञानाद विवेकसाक्षात्काराद् भवति मुक्तिः पुरुषस्य चेतनस्य] ज्ञान से सारी प्रक्रियाओं को जान लेने से विवेक साक्षात्कार होने से तत्वज्ञान होने से पुरुष की मुक्ति होगी ।।२३।।

अथ च -

बन्धो विपर्ययात् ।।२४।।

सूत्रार्थ= मिथ्याज्ञान से जीवात्मा का बंधन होता है।

[(विपर्ययात्-बन्धः) तद्विपरीतादज्ञानात् प्रक्रमस्याविवेकाद् भवति पुरुषस्य चेतनस्य देहे बन्धः] तत्वज्ञान से विपरीत अज्ञान (मिथ्याज्ञान) से प्रक्रम को ठीक से न जानने से चेतन पुरुष देह में बंध जाता है ।।२४।।

तत्र मुक्तिविषये -

तत्र मुक्तिविषये -

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ।।२५।।

(नियतकारणत्वात्) मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानस्य नियतकारणत्वमनिवार्यकारणत्वमस्ति, तस्मात् (समुच्चयविकल्पौ न) साधनान्तरेण सहास्य समुच्चयभावो विकल्पो वा नास्ति । यद्यप्युच्यते "विद्याकर्मणी समन्वारभेते" (बृह० ४.४.२) ज्ञानकर्मणोः समुच्चयः, परन्तु स एष ज्ञानकर्मणोः साधनत्वेन समुच्चयो न मुक्तिविषयकोऽपितु पुनर्जन्मप्राप्तौ वर्णितः "एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो... तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति... तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते" (बृह० ४.४.२) अथ च यत्र क्वचिद् विकल्पः प्रतिभासते "अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा" (यजु० ४०.१४) इति कथनात् तत्र कर्मणो ज्ञानांगत्वं लक्ष्यते न हि कर्म स्वतन्त्रं विकल्परूपेण मुक्तिसाधनम् । उक्तं हि श्रुतौ ज्ञानस्यैव मुक्तिसाधनत्वम्

नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ ।।२५।।

सूत्रार्थ=मुक्ति की प्राप्ति में तत्वज्ञान निश्चित कारण होने से इस ज्ञान के साथ किसी अन्य साधन सकाम कर्म आदि का न तो समुच्चय है न ही विकल्प है।

(नियतकारणत्वात्) मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानस्य नियतकारणत्वमनिवार्यकारणत्वमस्ति मुक्ति प्राप्ति के लिए ज्ञान का तत्वज्ञान का अनिवार्यत्व कारण है, [**तस्मात् (समुच्चयविकल्पौ न) साधनान्तरेण सहास्य समुच्चयभावो विकल्पो वा नास्ति**] इसलिए किसी अन्य साधन के साथ इसका (तत्वज्ञान) न तो समुच्चय कर सकते हैं न विकल्प कर सकते हैं [। **यद्यप्युच्यते "विद्याकर्मणी समन्वारभेते" (बृह० ४.४.२) ज्ञानकर्मणोः समुच्चयः**] सिद्धांती कहते हैं यद्यपि शास्त्रों में ऐसा कहा गया है "जब व्यक्ति शरीर छोड़ के दूसरे जन्म में जाएगा तो विद्या और कर्म दोनों उसके साथ चलेंगे" यहाँ ज्ञान और कर्म को समुच्चय बताया तो है, [**परन्तु स एष ज्ञानकर्मणोः साधनत्वेन समुच्चयो न मुक्तिविषयकोऽपितु पुनर्जन्मप्राप्तौ वर्णितः**] परंतु यह ज्ञान कर्म का समुच्चय मुक्ति के विषय में नहीं है, यहाँ पुनर्जन्म प्राप्ति के संदर्भ में बताया जा रहा है [**"एष आत्मा निष्क्रामति चक्षुष्टो... तमुत्क्रामन्तं प्राणोऽनूत्क्रामति... तं विद्याकर्मणी समन्वारभेते"**] ये आत्मा निकल जाता है शरीर से कहाँ से निकलता हैं? आँख से भी निकाल सकता है ....जब जीवात्मा शरीर से बाहर निकलता है तो मुख्य प्राण भी इसके साथ बाहर निकलता है......फिर उसके साथ जो उसने ज्ञान अर्जित किया और कर्म किए वह भी साथ साथ चलते हैं [**(बृह०४.४.२) अथ च यत्र क्वचिद् विकल्पः प्रतिभासते**] और जहां कहीं विकल्प प्रतीत होता है [**"अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा"**] "अविद्या से मृत्यु को पार करके, और विद्या से मोक्ष हो जाता है" [**(यजु० ४०.१४) इति कथनात् तत्र कर्मणो ज्ञानांगत्वं लक्ष्यते न हि कर्म स्वतन्त्रं विकल्परूपेण मुक्तिसाधनम्**] जहां कहीं ऐसा लगता है कि कर्म उपासना से व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त कर लेता है (तो ऐसा लगता है कर्म और उपासना विकल्प है) तो वहाँ ऐसा जानना चाहिए कि वहाँ कर्म को ज्ञान का अंग कहा जा रहा है स्वतंत्ररूप में कर्म को विकल्प मुक्ति का साधन नहीं समझना चाहिए। [**उक्तं हि श्रुतौ ज्ञानस्यैव मुक्तिसाधनत्वम्** श्रुति में मोक्ष का साधन ज्ञान को ही बताया है "**वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्। तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।" (यजु०**

''वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।'' (यजु० ३१.१८) ।।२५।।

पूर्वकथने युक्तिमाह -

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ।।२६।।

(स्वप्नजागराभ्याम्-इव मायिकामायिकाभ्याम्) स्वप्नजागरणाभ्यां साधनाभ्यां कल्पिताकल्पितानुभवफलाभ्यां सदृशे ज्ञानकर्मणी स्तः, यथा स्वप्नजागरणयोः समुच्चयो न भवति विरुद्धत्वात्, तथा न हि विकल्पो भवति तयोर्भिन्नभिन्नफलवत्त्वात् तथैव (उभयोः) ज्ञानकर्मणोः समुच्चविकल्पयोर्विषयेऽपि विज्ञेयम्।अतः (पुरुषस्य मुक्तिः-न) तयोः समुच्चयेन विकल्पेन वा पुरुषस्य मुक्तिर्भवतीति न सम्यक् ।।२६।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते -

इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ।।२७।।

३१.१८)] यहाँ श्रुति का प्रमाण दिया- इस महान सर्वशक्तिमान को में जनता हूँ, वह सूर्य के समान तेजस्वी अंधकार से परे है। उस महान परमेंश्वर को जानकार ही मृत्यु का उलंघन किया जा सकता है इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं हैं ।।२५।।

पूर्वकथने युक्तिमाह - पूर्व कथन की पुष्टि में एक युक्ति कहते हैं-

स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य ।।२६।।

सूत्रार्थ=स्वप्न और जागरण अवस्था के समान तत्वज्ञान और सकाम कर्म के समुच्चय अथवा विकल्प से आत्मा की मुक्ति नहीं हो सकती।

[(स्वप्नजागराभ्याम्-इव मायिकामायिकाभ्याम्) स्वप्नजागरणाभ्यां साधनाभ्यां कल्पिताकल्पितानुभवफलाभ्यां सदृशे ज्ञानकर्मणी स्तः स्वप्न जागरणरूपी] अवस्थाओं साधनों में (स्वप्न में जो कुछ भी देखते हैं वह काल्पनिक होता है) स्वप्न का कल्पित फल है और जागृत का वास्तविक फल है, इस तरह के अनुभव फल दोनों अलग अलग होते हैं। उसी के समान ज्ञान और कर्म भी हैं, **[यथा स्वप्नजागरणयोः समुच्चयो न भवति विरुद्धत्वात्]** जैसे जागरण और स्वप्न अवस्था का समुच्चय नहीं हो सकता दोनों में विरोध होने से, **[तथा न हि विकल्पो भवति तयोर्भिन्नभिन्नफलवत्त्वात्]** वैसे ही इनमें विकल्प भी नहीं हो सकता दोनों का फल अलग अलग होने से **[तथैव (उभयोः) ज्ञानकर्मणो समुच्चविकल्पयोर्विषयेऽपि विज्ञेयम्]** ऐसे ही तत्वज्ञान और सकाम कर्मों का समुच्चय और विकल्प के संबंध में जानना चाहिए। **[अतः (पुरुषस्य मुक्तिः-न) तयोः समुच्चयेन विकल्पेन वा पुरुषस्य मुक्तिर्भवतीति न सम्यक्]** इसीलिए दोनों का समुच्चय से अथवा विकल्प से जीवात्मा की मुक्ति हो जाएगी, यह बात ठीक नहीं है।।२६।।

पूर्वपक्षत्वेनोच्यते - अब अगले सूत्र में पूर्वपक्षी की ओर से कहते है-

(इतरस्य-अपि मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानमेव नियतकारणं न तत्सहयोगि कर्म तर्हीतरस्य यज्ञादिकर्मतो भिन्नस्य यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपस्य योगाभ्यासनामककर्मणोऽप्यनुष्ठानात् (आत्यन्तिकं न) दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपमात्यन्तिकं मुक्तिपदं न सिध्येत् कर्मसामान्याद्-योगाभ्यासस्यपि तथा ज्ञानतोऽतिरिक्तत्वात्। उच्यते च श्रुतौ मुक्तिसाधनत्वेन योगाभ्यासोऽपि ज्ञानसहयोगी ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' (मुण्ड० ३.२.६) ।।२७।।

अपरञ्च -

संकल्पितेऽप्येवम् ।।२८।।

(संकल्पिते-अपि) संकल्पिते मानसे जपेऽपि (एवम्) एवं पूर्ववत् खलु नात्यन्तिकं मुक्तिफलं

इतरस्यापि नात्यन्तिकम् ।।२७।।

सूत्रार्थ= योगाभ्यास आदि कर्म के अनुष्ठान से भी मोक्ष नहीं मिलेगा।

[(इतरस्य-अपि मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानमेव नियतकारणं न तत्सहयोगि कर्म तर्हीतरस्य यज्ञादिकर्मतो भिन्नस्य यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधिरूपस्य योगाभ्यासनामककर्मणोऽप्यनुष्ठानात् (आत्यन्तिकं न) दुःखात्यन्तनिवृत्तिरूपमात्यन्तिकं मुक्तिपदं न सिध्येत्] पूर्वपक्षि आरोप लगाता है सिद्धांती पर- सिद्धांती की बात खंडन करते हुए कहता है- ''आप कहते हो की ज्ञान से मुक्ति होती है? यह ठीक नहीं, मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान ही निश्चित कारण हो और सहयोगी कर्म न हो या उसका समुच्चय न हो अथवा विकल्प न हो'' अगर आप ऐसी बात कहते हैं तो यज्ञ आदि कर्म से भिन्न यम, निमय, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ऐसे आठ योगाभ्यास अनुष्ठान नामक कर्म हैं इस कर्म के अनुष्ठान से भी दुःख अत्यंत निवृत्ति रूप मुक्ति पद इससे भी प्राप्त नहीं होगा **[कर्मसामान्याद्-योगाभ्यासस्यपि तथा ज्ञानतोऽतिरिक्तत्वात्]** पूर्वपक्षि कहता है कि योगाभ्यास भी तो कर्म है और यह ज्ञान से तो भिन्न है (ज्ञान का अर्थ है जानना, कर्म का अर्थ है क्रिया करना। दोनों अलग अलग हैं)। **[उच्यते च श्रुतौ मुक्तिसाधनत्वेन योगाभ्यासोऽपि ज्ञानसहयोगी]** जबकि उपनिषद आदि में कहा है- योगाभ्यास भी मोक्ष प्राप्ति के लिए साधन के रूप में ज्ञान का सहयोगी है (आप सहयोगी होने का मना करते हो जबकि शास्त्र में कहा है।) **[''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद यतयः शुद्धसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे'' (मुण्ड० ३.२.६)]** जिन्होंने वेदान्त के ज्ञान से अर्थों को सुनिश्चित कर लिया है (सब वस्तुओं को ठीक ठीक समझ लिया है) और उन्होने सन्यास को भी धारण कर विवेक वैराग्य प्राप्त कर अपने चित्त को शुद्ध कर लिया है। वे लोग ब्रह्म लोकों में परान्त काल के पश्चात मोक्ष का आनद भोग करके वापिस जगत में लौट आते हैं।।२७।।

अपरञ्च -

संकल्पितेऽप्येवम् ।।२८।।

सिध्येत् । उच्यते हि मानसं कर्म ध्यानं मुक्तिसाधनत्वेन ''ओमित्येव ध्याययात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्'' (मुण्ड० २.२.६) तथा ''तज्जपस्तदर्थभावनम्'' (योग० १.२८) पूर्वं चेदं च सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चाप्रासंगिकत्वेन व्याख्यातम् ।।२८।।

सूत्रद्वयोक्तः पूर्वपक्षः समाधीयते -

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।२९।।

(भावनोपचयात्-शुद्धस्य) यमनियमादियोगाभ्यासानुष्ठानात् तथा मानसजपध्यानात् खलु भवति भावनोपचयो पवित्रभावनानां परमात्मानुरागभावनानां च प्रवृद्धिस्ततश्च योगाभ्यासी ध्यानी वा शुद्धः

सूत्रार्थ= मानसिक कर्म जप करने पर भी मोक्ष नहीं मिलेगा, जबकि श्रुतियों में मोक्ष के लिए जप का विधान है।

[(संकल्पिते-अपि) संकल्पिते मानसे जपेऽपि (एवम्) एवं पूर्ववत् खलु नात्यन्तिकं मुक्तिफलं सिध्येत्] जैसे ये अष्टांग योग से मुक्तिफल प्राप्त नहीं होगा वैसे ही संकल्प करके मानसिक जप से। **[उच्यते हि मानसं कर्म ध्यानं मुक्तिसाधनत्वेन]** आगे कहते हैं मानसिक जप ध्यान ये मानसिक कर्म है मुक्ति का साधन है **[''ओमित्येव ध्याययात्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात्'']** ''ओ३म् का उच्चारण करके ईश्वर का ध्यान करो वह अविद्या से परे हैं इससे तुम्हारा कल्याण होगा और दुःखों से पार हो जाओगे'' (यहाँ जप मानसिक कर्म है उसका विधान किया है मुक्ति प्राप्ति के लिए) **[(मुण्ड० २.२.६) तथा ''तज्जपस्तदर्थभावनम्'']** और प्रमाण दिया योगदर्शन में लिखा है ''उसका जप करो उसके अर्थ की भावना करो'' **[(योग० १.२८) पूर्वं चेदं च सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये चाप्रासंगिकत्वेन व्याख्यातम्]** (स्वामी ब्रह्ममुनि जी कह रहे है हमने ये सूत्र २८ और २७ वा को) पूर्वपक्ष का मानकर व्याख्या की परंतु इन दोनों सूत्रों की अनिरुद्धवृत्ति में और विज्ञान भिक्षु भाष्य में अप्रासंगिक व्याख्या की गयी है ।।२८।।

सूत्रद्वयोक्तः पूर्वपक्षः समाधीयते - पिछले दो सूत्रों से जो पूर्वपक्ष कहा गया अब उसका समाधान करते हैं-

भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत् ।।२९।।

सूत्रार्थ= निष्काम कर्म, ध्यान, जप, उपासना, आदि करने से योगाभ्यासी में पवित्र भावना की वृद्धि होती है, उससे व्यक्ति का चित्त शुद्ध हो जाता है, ऐसे व्यक्ति का सम्पूर्ण योगाभ्यास निष्काम कर्म आदि मूल कारण (तत्वज्ञान) के तुल्य हो जाता है।

[(भावनोपचयात्-शुद्धस्य) यमनियमादियोगाभ्यासानुष्ठानात् तथा मानसजपध्यानात् खलु भवति भावनोपचयो पवित्रभावनानां परमात्मानुरागभावनानां च प्रवृद्धिस्ततश्च] सिद्धांती कहते हैं- यम नियम आदि उस अष्टांग योग के अभ्यास से आचरण करने से और मानसिक जप ध्यान आदि करने से प्रवित्र भावनाओं की वृद्धि होती है परमात्मा के प्रति अनुराग प्रीति बढ़ेगी **[योगाभ्यासी ध्यानी वा शुद्धः पवित्रो वृत्तिरहितो वासनारहितश्च जायते]** (जब यमनियम का पालन करेगा ध्यान करेगा) तो उससे योगाभ्यासी

पवित्रो वृत्तिरहितो वासनारहितश्च जायते तस्य शुद्धस्य पवित्रस्य वृत्तिरहितस्य वासनारहितस्य योगाभ्यासिनो ध्यानिनो वा (सर्वं प्रकृतिवत्) मुक्तिप्राप्तौ सर्वमेतदुक्तं साधनं प्रकृतिवद् भवति प्रकृतिर्मूलं मूलसाधनवद् भवति । मूलसाधनं ज्ञानं नियतकारणं तद्वज्ज्ञानानन्यत् तदंग भवति। उक्तं यथा ''योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः''(योग० २.२८) तथा ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः'' (मुण्डको० ३.२.६)। अथवा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः स्वभावः, यथास्वभावं सर्वं भवति, स्वभावो हि पुरुषस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तत्वम् ''न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते'' (सांख्य० १.११) इति नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः तेन नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाव- वत्त्वं सम्पद्यते तथा ''अध्यात्मयोगाधिगमेन मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति'' (कठो० १.२.१२) यद्वा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः खलु सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था समावस्था गुणचेष्टारहिता तथैव तस्य सर्वं करणं चित्तमन्तःकरणं गुणवैषम्यरहितं गुणाऽधिकाररहितं भवति ।।२९।।

भवतु योगाभ्यासध्यानविषयस्य मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानांगतया साधनभावेन वाऽनुष्ठेयत्वं कथं तत्सेव्यमिति विव्रियते -

शुद्ध पवित्र हो जाएगा वासना-वृत्ति रहित हो जाएगा [**तस्य शुद्धस्य पवित्रस्य वृत्तिरहितस्य वासनारहितस्य योगाभ्यासिनो ध्यानिनो वा (सर्वं प्रकृतिवत्) मुक्तिप्राप्तौ सर्वमेतदुक्तं साधनं प्रकृतिवद् भवति**] जिसने अष्टांग योग का पालन किया वह शुद्ध पवित्र हो जाएगा वृत्तियाँ हट जाएंगी वासना रहित हो जाएगा ऐसे उस योगाभ्यासी अथवा ध्यानी का मुक्ति प्राप्ति में जो कुछ भी साधन अब तक बताए गए थे (निष्काम कर्म, अष्टांगयोग, मानसिक जप ध्यान करना) ये सब प्रकृति (ज्ञान) के तुल्य हो जाएगा जब प्रकृति के तुल्य हो जाएगा तो न इसका समुच्चय होगा और न विकल्प होगा [**प्रकृतिर्मूलं मूलसाधनवद् भवति**] प्रकृति का अर्थ है ''मूल'' मूल (ज्ञान) साधन के समान हो जाएगा। [**मूलसाधनं ज्ञानं नियतकारणं तद्वज्ज्ञानानन्यत् तं भवति**] मूल कारण तो ज्ञान है वह निश्चित कारण है वह ज्ञान से भिन्न नहीं माना जाएगा बल्कि उसका अंग माना जाएगा। [**उक्तं यथा ''योगांगानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः''**] जैसे के कहा है- योग के अंगों का अनुष्ठान से अशुद्धि का क्षय होता जाएगा अविद्या का नाश होगा ज्ञान बढ़ता जाएगा जब तक तत्वज्ञान प्राप्त न हो जाए [**(योग० २.२८) तथा ''वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्त्वाः'' (मुण्डको० ३.२.६)**] (सर्वं प्रकृतिवत की एक व्याख्या पूरी हुई)। [**अथवा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः स्वभावः**] यहाँ प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, [**यथास्वभावं सर्वं भवति**] जैसा स्वभाव हो शेष वैसा ही हो जाता है, [**स्वभावो हि पुरुषस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तत्वम्**] जीवात्मा का स्वभाव नित्य शुद्ध, बुद्ध, और मुक्त है किसी में घुलता मिलता नहीं है, इसकी पुष्टि में सांख्य का प्रमाण दिया - [**''न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते'' (सांख्य०१.११) इति नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः पुरुषः तेन नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभाववत्त्वं सम्पद्यते तथा**] जीवात्मा का स्वभाव नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त है उसने जो जप स्वाध्याय ध्यान योगाभ्यास आदि किया वह उसके स्वभाव के तुल्य ही हो जाता है [**''अध्यात्मयोगाधिगमेन मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति''**] ऐसा ही शास्त्र में बताया है की अध्यात्म योग की प्राप्ति से धीर योगी व्यक्ति मनन करके लौकिक दुख और सुख दोनों को छोड़ देता है, **(कठो० १.२.१२)** (सर्वं प्रकृतिवत का तीसरा अर्थ है) [**यद्वा (सर्वं प्रकृतिवत्) प्रकृतिः खलु सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था समावस्था गुणचेष्टारहिता**

रागोपहतिर्ध्यानम् ।।३०।।

(रागोपहतिः-ध्यानम्) संसारसक्तिरिन्द्रियभोगप्रवृत्तिर्वा रागः, तस्य खलूपशमो निवृत्तिर्ध्यानं मनसः स्थिरीभावः ।।३०।।

ध्यानसाधनम् -

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।।३१।।

(वृत्तिनिरोधात्) प्रमाणादिपञ्चवृत्तीनां निरोधात् (तत्सिद्धिः) ध्यानसिद्धिर्भवति ।।३१।।

कथं पुनर्वृत्तिनिरोधो जायते । अत्रोच्यते -

धारणाऽऽसनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।।३२।।

तथैव तस्य सर्वं करणं चित्तमन्तःकरणं गुणवैषम्यरहितं गुणाऽधिकाररहितं भवति] यहाँ प्रकृति का तीसरा अर्थ है मूल प्रकृति -सत्वरजतम। प्रकृति की जो साम्यवास्था है वह प्रकृति है उसकी समावस्था अर्थात गुणचेष्टा रहित (बिलकुल शांत पडी रहती है प्रलय अवस्था में) उसी के तुल्य जीवात्मा (योगाभ्यासी व्यक्ति) का चित्त अंत:करण शांत हो जाता है, गुणों की विषमता से रहित हो जाता है अब उस पर गुणों का प्रभाव नहीं रहता (रजोगुण तमोगुण आदि के प्रभाव से रहित हो जाता है) इससे वह सारी वस्तुए प्रक्रियाएं उसको शुद्ध बनाने में सहयोगी होती है तो वह ज्ञान का अंग बनती हैं। इसलिए कर्म और ज्ञान का न तो समुच्चय है और न विकल्प।।२९।।

[भवतु योगाभ्यासध्यानविषयस्य मुक्तिप्राप्तौ ज्ञानांगतया साधनभावेन वाऽनुष्ठेयत्वं कथं तत्सेव्यमिति विव्रियते -] चलो योगाभ्यास ध्यान विषय का मुक्ति प्राप्ति में ज्ञान का अंगरूप साधन मान लिया जाए, तो इसका अनुष्ठान कैसे किया जाए? इसको विस्तार पूर्वक कहते हैं-

रागोपहतिर्ध्यानम् ।।३०।।

सूत्रार्थ= भौतिक वस्तुओं में राग का उपशम (विनाश) हो जाना ही ध्यान है।

[(रागोपहतिः-ध्यानम्) संसारसक्तिरिन्द्रियभोगप्रवृत्तिर्वा रागः] संसार के पदार्थों में फंसे रहना (आसक्त रहना) अथवा दूसरे शब्दों में कहें की इंद्रिय भोगों में रुचि रखना इसका नाम है राग, **[तस्य खलूपशमो निवृत्तिर्ध्यानं मनसः स्थिरीभावः]** उस राग का उपशम हो जाना अर्थात निवृत्ति हो जाना, राग हट जाना, भोगौ में रुचि समाप्त हो जाना ये ध्यान कहलाता है। कैसे? जब मन में भोगों को भोगने की इच्छा ही समाप्त हो जाएगी मन की चंचलता समाप्त हो जाएगी मन स्थिर हो जाएगा तो ध्यान हो ही जाएगा ।।३०।।

ध्यानसाधनम् -

वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः ।।३१।।

सूत्रार्था- वृत्तियों के निरोध से ध्यान की सिद्धि हो जाती है।

[(वृत्तिनिरोधात्) प्रमाणादिपञ्चवृत्तीनां निरोधात् (तत्सिद्धिः) ध्यानसिद्धिर्भवति] प्रमाण (प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति) आदि पाँच वृतियों का निरोध हो जाने से ध्यान की सिद्धि हो जाती है ।।३१।।

(धारणाऽऽसनस्वकर्मणा) धारणयाऽऽसनेन स्वकर्मणा च (तत्सिद्धिः) वृत्तिनिरोधस्य सिद्धिर्भवति ।।३२।।

अथ च -

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।।३३।।

(निरोधः) निरोधो धारणार्थः । मनसो निरोधो देशबन्धो धारणारूपः (छर्दिविधारणाभ्याम्) प्राणस्य छर्दनेन वेगाद् बहिर्निसारणेन स्तम्भनेन च सम्पद्यते ।।३३।।

स्थिरसुखमासनम् ।।३४।।

(स्थिरसुखम्-आसनम्) शरीरस्य स्थिरं सुखं यस्मिन् भवति तथाभूतं शरीरचेष्टारहितं शरीरसुखसम्पादकमासनं विधेयम् ।।३४।।

स्वकर्म विषये -

स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ।।३५।।

(स्वकर्म) स्वकर्म खलु (स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्) स्वाश्रमस्य मुमुक्षोराश्रमस्य संन्यासाश्रमस्य विहितं यदहिंसादिकर्मानुष्ठानं तत्सेवनीयम् ।।३५।।

कथं पुनर्वृत्तिनिरोधो जायते। अत्रोच्यते - वृत्ति निरोध कैसे होता है? इस पर कहते हैं -

धारणाऽऽसनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः ।।३२।।

सूत्रार्था= धारणा, आसन, और स्वकर्म से ध्यान की सिद्धि होती है।

[**(धारणाऽऽसनस्वकर्मणा) धारणयाऽऽसनेन स्वकर्मणा च (तत्सिद्धिः)**]वृत्तिनिरोधस्य सिद्धिर्भवति इस सूत्र में तीन उपाय बताए हैं- धारणा = (मन को शरीर के किसी एक स्थान पर स्थिर करना, टिका देना मस्तक नाभि हृदय कंठ कहीं भी जहां पर अनुकूल हो इसका नाम है धारणा) करने से वृत्ति निरोध होता है, आसन= (सुखपूर्वक स्थिरतापूर्वक शरीर को कष्ट न हो अच्छा बैठने का आसन हो कमर गर्दन रीड की हड्डी एक सीध में हो - इसका नाम आसन है) और अपने-अपने आश्रम के कर्म जो शास्त्रों में बताए गए हैं उनका अच्छी प्रकार से पालन करें। ऐसा करने से मन की एकाग्रता अच्छी रहती है और वृत्ति निरोध में सहायता मिलती है।।३२।।

अथ च -

निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम् ।।३३।।

सूत्रार्थ= प्राण को ज़ोर से बाहर धक्का देने और उसे बाहर ही रोक देने से मन का निरोध हो जाता है।

(निरोधः) निरोधो धारणार्थः यहाँ जो निरोध शब्द है वह धारणा के अर्थ में है (धारणा= मन को एक स्थान पर टिकाना)। **[मनसो निरोधो देशबन्धो धारणारूपः]** मन को किसी देश-स्थान विशेष पर टिका देना, स्थिर कर देना, बांध देना यह मन का धारणा रूप है। फिर यह धारणा कैसे होगी?

पुनश्च –

वैराग्यादभ्यासाच्च ।।३६।।

(वैराग्यात्) वृत्तिनिरोधो वैराग्याद् द्विविधादपरात्पराच्च विषयदोषदर्शनात् तथा ज्ञानप्रसादमात्रात् ''ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्'' (योग० १.१६ व्यासः) तथा (अभ्यासात् च) ध्यानाभ्यासाच्च भवति ।।३६।।

अधुना विपर्ययविषयमाह –

विपर्ययभेदाः पञ्च ।।३७।।

(विपर्ययभेदाः पञ्च) ज्ञानप्रतिपक्षिणो विपर्ययस्य मिथ्याज्ञानस्य भेदाः पञ्च सन्ति ।।३७।।

विपर्ययस्य कारणं खल्वशक्तिरुच्यते –

(छर्दिविधारणाभ्याम्) प्राणस्य छर्दनेन वेगाद् बहिर्निसारणेन स्तम्भनेन च सम्पद्यते] प्राण को वेग से धक्का देकर बाहर निकालना और उसको वहाँ रोक देना ऐसा करने से मन का निरोध हो जाता है।।३३।।

स्थिरसुखमासनम् ।।३४।।

सूत्रार्थ= स्थिरता पूर्वक और सुख पूर्वक जिस अवस्था में बैठा जाए वह आसन है।

(स्थिरसुखम्-आसनम्) शरीरस्य स्थिरं सुखं यस्मिन् भवति तथाभूतं शरीरचेष्टारहितं शरीरसुखसम्पादकमासनं विधेयम् जिस स्थिति से शरीर में सुख भी हो और स्थिरता भी इस प्रकार शरीर की क्रियाओं से, चेष्टाओं से रहित हो जिससे हम बैठकर ईश्वर का ध्यान कर सके उस स्थिति का नाम आसन है ।।३४।।

स्वकर्म विषये – स्वकर्म के विषय में बताया जा रह है–

स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम् ।।३५।।

सूत्रार्थ= सभी आश्रमों के लिए अथवा सन्यास के लिए जो विहित अहिंसा आदि कर्मों का अनुष्ठान करना स्वकर्म है।

[(स्वकर्म) स्वकर्म खलु (स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्) स्वाश्रमस्य मुमुक्षोराश्रमस्य संन्यासाश्रमस्य विहितं यदहिंसादिकर्मानुष्ठानं तत्सेवनीयम्] अपने आश्रम का मुमुक्षु के आश्रम का (सन्यास आश्रम का) जो विहित कर्म है अहिंसा (यम-नियम) आदि कर्म का अनुष्ठान करना उसका आचरण करना ''स्वकर्म'' है।।३५।।

पुनश्च –

वैराग्यादभ्यासाच्च ।।३६।।

सूत्रार्थ= वैराग्य और अभ्यास से वृत्ति निरोध की सिद्धि होता है।

[(वैराग्यात्) वृत्तिनिरोधो वैराग्याद् द्विविधादपरात्पराच्च विषयदोषदर्शनात् तथा ज्ञानप्रसादमात्रात्

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।।३८।।

(अशक्तिः-अष्टाविंशतिधा) अशक्तिः खल्वष्टाविंशतिभेदयुक्ता भवति ।।३८।।

पुनस्तत्कारणं तुष्टिमाह -

तुष्टिर्नवधा ।।३९।।

(तुष्टिः-नवधा) तुष्टिस्तु नवप्रकाराऽस्ति ।।३९।।

तस्याः कारणं सिद्धिः सा च -

सिद्धिरष्टधा ।।४०।।

(सिद्धिः-अष्टधा) सिद्धिः खल्वष्टविधा भवति ।।४०।।

अत्र वक्तव्यम् -

''विपर्ययभेदाः पञ्च'' (३७) ''अशक्तिरष्टाविंशतिधा'' (३८) ''तुष्टिर्नवधा'' (३९)

''ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम्'' (योग० १.१६ व्यासः) तथा (अभ्यासात् च) ध्यानाभ्यासाच्च भवति] वृत्ति निरोध वैराग्य से होता है और वैराग्य दो प्रकार का होता है एक अपर वैराग्य दूसरा पर वैराग्य (छोटा वैराग्य और ऊंचा वैराग्य) विषयों में दोष का दर्शन करना यदि हम इंद्रियों के भोग में ही पडे रहे तो उसके हमें क्या क्या परिणाम नुकसान भोगने पडेंगे? उनका विचार करने, चिंतन करने से अपर वैराग्य होता है । पर वैराग्य में ज्ञान का स्तर ऊंचा होता है विषयों में दोष दिखता है तथा ईश्वर में रुचि बडती है । इस प्रकार से वृत्ति निरोध होता है। ज्ञान की पराकाष्ठा वैराग्य है। ध्यान का अभ्यास करने से वृत्ति निरोध होता है ।।३६।।

अधुना विपर्ययविषयमाह - अब विपर्यय के विषय को बताते हैं-

विपर्ययभेदाः पञ्च ।।३७।।

सूत्रार्थ= विपर्यय (मिथ्याज्ञान) के पाँच भेद हैं।

[(विपर्ययभेदाः पञ्च) ज्ञानप्रतिपक्षिणो विपर्ययस्य मिथ्याज्ञानस्य भेदाः पञ्च सन्ति] तत्वज्ञान का जो विरोधी पक्ष है वह है विपर्यय। उस विपर्यय के अर्थात मिथ्याज्ञान के पाँच भेद हैं।।३७।।

विपर्ययस्य कारणं खल्वशक्तिरुच्यते - इस विपर्यय का कारण है अशक्ति। इसके विषय में कहते हैं।

अशक्तिरष्टाविंशतिधा ।।३८।।

सूत्रार्थ= अशक्ति अठाइस प्रकार की होती है

[(अशक्तिः-अष्टाविंशतिधा) अशक्तिः खल्वष्टाविंशतिभेदयुक्ता भवति] अशक्ति अठाइस प्रकार की होती है।।३८।।

पुनस्तत्कारणं तुष्टिमाह - अशक्ति का कारण है तुष्टि।

''सिद्धिरष्टधा'' (४०) इति चतुःसूत्रीमुक्त्वा तथैव ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) ''एवमितरस्याः'' (४२) ''आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः'' (४३) ''ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा'' (४४) एषा चतुःसूत्री पुनरुक्ता, सैषा पुनरुक्तिरयुक्ता प्रतिभाति, मन्येऽहमत्रैषा पुनरुक्तिरियती हि न कृताऽऽसीत् सूत्रकारेण किन्तु सविवरणा कृता भवेत्, कालवशाद् यद्वा लिपिलेखकविभ्रमादथवा कस्यचिद् भाष्यकारस्याज्ञानात् तत्रस्थविवरणवचनानि सूत्रबाह्यानि मत्वा पृथक्कृतानि स्युः पुनश्चाल्पविवरणेन प्रायः संख्यानिर्देशेन सह सैषा पुनरुक्तिरवशिष्टा भवेदिति मे मतिः । द्वितीया विचारणा - ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) इति सूत्रतः 'पूर्ववत्' शब्दः सर्वत्रोत्तरेषु त्रिषु सूत्रेष्वनुषज्यते पूर्वाचार्यकृतविवरणवदर्थे तदा ''विपर्ययभेदाः पञ्च''... (३७-४०) इत्याद्या पूर्वा चतुःसूत्री निरर्थिका भवति । तृतीया विचारणा -तत्रैव पूर्वचतुःसूर्त्याम् ''विपर्ययभेदाः पञ्च पूर्ववत्'' (३७) इति सूत्ररचनया भाव्यं तत एव ''पूर्ववत्' शब्दः पूर्वचतुः

तुष्टिर्नवधा ।।३९।।

सूत्रार्थ= तुष्टि नौ प्रकार की होती है।

(तुष्टिः-नवधा) तुष्टिस्तु नवप्रकाराऽस्ति तुष्टि नौ प्रकार की है।।३९।।

तस्याः कारणं सिद्धिः सा च - उस तुष्टि का कारण है सिद्धि।

सिद्धिरष्टधा ।।४०।।

(सिद्धिः-अष्टधा) सिद्धिः खल्वष्टविधा भवति सिद्धि आठ प्रकार की होती है।।४०।।

अत्र वक्तव्यम् - यहाँ इस विषय में कहते हैं-

[''विपर्ययभेदाः पञ्च'' (३७) ''अशक्तिरष्टाविंशतिधा'' (३८) ''तुष्टिर्नवधा'' (३९) ''सिद्धिरष्टधा'' (४०) इति चतुःसूत्रीमुक्त्वा तथैव ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) ''एवमितरस्याः'' (४२) ''आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः'' (४३) ''ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा'' (४४) एषा चतुःसूत्री पुनरुक्ता, सैषा पुनरुक्तिरयुक्ता प्रतिभाति] ये जो पुनरुक्ति है यह युक्त लगती है।, **[मन्येऽहमत्रैषा पुनरुक्तिरियती हि न कृताऽऽसीत् सूत्रकारेण किन्तु सविवरणा कृता भवेत्]** स्वामीब्रह्ममुनि भाष्यकार कहते हैं- मै ऐसा मानता हूँ, कि ये जो पुनरुक्ति थी ये केवल मात्र इतनी ही नहीं थी, किन्तु कुछ और भी विवरण दिया होगा, **[कालवशाद् यद्वा लिपिलेखकविभ्रमादथवा कस्यचिद् भाष्यकारस्याज्ञानात् तत्रस्थविवरणवचनानि सूत्रबाह्यानि मत्वा पृथक्कृतानि स्युः पुनश्चाल्पविवरणेन प्रायः संख्यानिर्देशेन सह सैषा पुनरुक्तिरवशिष्टा भवेदिति में मतिः]** संभावना व्यक्त करते हुए कहते हैं- कालवशात् काल के कारण (लंबे काल में सैंकड़ों वर्षों) अथवा लिपि लेखक के भ्रम से भाष्यकार की अज्ञानता से शास्त्र की बात का ठीक अर्थ न लिया हो, उन्होंने कुछ मिलावट अथवा कुछ अंश व्यर्थ जान हटा दिए हों, अल्पविवरण के साथ संख्या के निर्देश सहित ये जो पुनरुक्ति थी ये तो बच गयी (पहले के जो चार सूत्र थे) और कुछ शब्द छूट गए ये एक संभावना मेंरी बुद्धि से लगती है।।

दूसरी संभावना **[द्वितीया विचारणा - ''अवान्तरभेदाः पूर्ववत्'' (४१) इति सूत्रतः 'पूर्ववत्'**

सूत्रीस्थेषु त्रिष्वन्येष्वपि सूत्रेषु किलानुवर्तनीयः, पुनरुक्तरचतुःसूत्री स्यादनावश्यकी । तत्रोभयतचतुःसूत्रीरक्षणाय प्रथमा विचारणा गरिष्ठा युक्ता च सा हि खल्वस्माभिरभीष्यते ।।

विपर्ययादीनां चतुर्णामपि विवरणं क्रमशः प्रदर्शयति सूत्रकारस्तत्र पूर्वं विपर्ययमाह -

अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ।।४१।।

(पूर्ववत्-अवान्तरभेदाः) पूर्ववदिति पूर्वस्य पञ्चेत्यनुषज्यते । पूर्वस्य प्रक्रमस्य विपर्ययस्यैकस्यापि सतः पञ्चावान्तरभेदाः सन्ति तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रोऽन्धतामिस्त्रश्चेति नामभिः ''विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्-तमोमोहोमहामोहस्तमिस्त्रोऽन्धतमिस्त्र इति'' (योग० १.८ व्यासः) ।।४१।।

अशक्तिमाह -

शब्दः सर्वत्रोत्तरेषु त्रिषु सूत्रेष्वनुषज्यते पूर्वाचार्यकृतविवरणवदर्थे तदा ''विपर्ययभेदाः पञ्च''... (३७-४०) इत्याद्या पूर्वा चतुःसूत्री निरर्थिका भवति] ४१ वें सूत्र से जो पूर्ववत शब्द आया, इसको अगले तीन सूत्रों में भी जो्ना चाहिए पूर्व आचार्य के द्वारा विवरण के अर्थ में ''पूर्ववत्' इसको प्रत्येक सूत्र में जोडना चाहिए, यदि हम ऐसा सोचे पूर्वपक्ष में तो पहले वाले चार सूत्र व्यर्थ हो जाते हैं।

तीसरी संभावना **[तृतीया विचारणा -तत्रैव पूर्वचतुःसूत्र्याम् ''विपर्ययभेदाः पञ्च पूर्ववत्'' (३७) इति सूत्ररचनया भाव्यं तत एव ''पूर्ववत्' शब्दः पूर्वचतुः सूत्रीस्थेषु त्रिष्वन्येष्वपि सूत्रेषु किलानुवर्तनीयः,पुनरुक्तरचतुःसूत्री स्यादनावश्यकी]** ''विपर्यय भेदाः पञ्च'' उसी के साथ ''पूर्ववत्' जोडदें तो ऐसी सूत्र की रचना होनी चाहिए थी यदि ऐसी सूत्र रचना होती तो उसी से पूर्ववत् शब्द बाकी के चार सूत्रों में चला जाता, इस पक्ष में अगले चार सूत्र बेकार हो जाएंगे उसकी आवश्यकता नहीं रहेगी। **[तत्रोभयतचतुःसूत्रीरक्षणाय प्रथमा विचारणा गरिष्ठा युक्ता च सा हि खल्वस्माभिरभीष्यते]** स्वामी ब्रह्ममुनि जी कहते हैं- तीन संभावनाएं रखीं, दूसरी, तीसरी सब में दोष दिख रहा है। इसलिए दोनों ही चतुसूत्रियों की रक्षा करने के लिए हमारी जो पहली विचारणा थी पहला पक्ष जो था, वो कुछ गरिष्ठ है, वही उचित है इसलिए हमने उसी को स्वीकार किया।।

[विपर्ययादीनां चतुर्णामपि विवरणं क्रमशः प्रदर्शयति सूत्रकारस्तत्र पूर्वं विपर्ययमाह -] विपर्यय आदि का चारों सूत्रों का विवरण क्रमशः सूत्रकार दिखलाते हैं, और इस प्रसंग में पहले विपर्यय कि बात आएगी-

अवान्तरभेदाः पूर्ववत् ।।४१।।

सूत्रार्थ=पूर्वोक्त मिथ्याज्ञान के (विपर्यय ज्ञान) पाँच अवांतर (आन्तरिक) भेद हैं।

[(पूर्ववत्-अवान्तरभेदाः) पूर्ववदिति पूर्वस्य पञ्चेत्यनुषज्यते] इस सूत्र में जो पूर्ववत शब्द है, वो क्या कह रहा है? जो पहले पहले अविद्या के पञ्च भेद बताए थे। ये उसके साथ जुडता है। **[पूर्वस्य प्रक्रमस्य विपर्ययस्यैकस्यापि सतः पञ्चावान्तरभेदाः सन्ति तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्रोऽन्धतामिस्त्रश्चेति**

एवमितरस्या ।।४२।।

(एवम्-इतरस्याः) एवं पूर्ववदेवाष्टाविंशतिविधत्वमवान्तरभेदादेकस्या अपि सत्याः खल्वनन्तराया अशक्तेर्विज्ञेयं तत्र-एकादशेन्द्रियाणां वधा इन्द्रियाणामेकादशाशक्तयः, सप्तदशशक्तयस्तु नवतुष्टीनां तथाष्टसिद्धीनां विघातानवलम्ब्य अजायन्ते ।।४२।।

तुष्टिमाह -

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः * ।।४३।।

(आध्यात्मिकादिभेदात्-नवधा तुष्टिः) आध्यात्मिकाद्ययवान्तरभेदान्नवधा तुष्टिर्भवति ।

नामभिः ''विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्-तमोमोहोमहामोहस्तमिस्त्रोऽन्धतमिस्त्र इति''(योग० १.८ व्यासः)] पूर्वक्रम से जो चल रहा है विपर्यय (मिथ्याज्ञान)। उस मिथ्याज्ञान के एक होते हुए भी उसके अवांतर भेद हैं, छोटे छोटे पाँच भेद हैं (जैसे एक मान के चार बच्चे होते हैं, यह पूरा एक परिवार है। ठीक ऐसे ही अविद्या माँ है, अन्य उसी के परिवार के सदस्य हैं) अविद्या के पाँच भेद हैं- तम, मोह, महामोह, तामिस्त्र, और अंधतामिस्त्र। इन नामों से पाँच विपर्यय कहे जाते हैं। योगदर्शन में जो पाँच क्लेश कहे गए हैं, उन्हीं के ये दूसरे नाम हैं ।।४१।।

अशक्तिमाह - अब अशक्ति को बतलाते हैं-

एवमितरस्या ।।४२।।

सूत्रार्थ= ऐसे ही इतरस्य (अशक्ति) के अठाइस भेद होते हैं।

[(एवम्-इतरस्याः) एवं पूर्ववदेवाष्टाविंशतिविधत्वमवान्तरभेदादेकस्या अपि सत्याः खल्वनन्तराया अशक्तेर्विज्ञेयं तत्र-एकादशेन्द्रियाणां वधा इन्द्रियाणामेकादशा- शक्तयः, सप्तदशशक्तयस्तु नवतुष्टीनां तथाष्टसिद्धीनां विघातानवलम्ब्य अजायन्ते] पूर्ववत् ही अठाइस प्रकार के अवांतर भेद होने से एक ही उसके पश्चात अर्थात मिथ्याज्ञान के पश्चात जो अशक्ति बताई गई थी, उस अशक्ति के भी अठाइस भेद जानने चाहिए। ग्यारह इंद्रियों के जो वध हैं (न्यूनता) है (दिखाई नहीं देता, सुनाई नहीं देता, चल नहीं पाते, सूंघ नहीं पाते, खा नहीं पाते। तो इंद्रियों की क्षमता जैसे जैसे कम होती जाएगी सामर्थ्य समाप्त होता जाता है यह कमी ही अशक्ति है) । अठाइस में से ग्यारह इंद्रियों की अशक्ति हो गयी। अब सत्रह अशक्ति- ये नौ तुष्टियों एवं आठ सिद्धियों के विघातों से उत्पन्न हो जाती है ।।४२।।

तुष्टिमाह -अब तुष्टि के विषय में कहते हैं-

आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः * ।।४३।।

सूत्रार्थ= आध्यात्मिक आदि भेद से नौ प्रकार की तुष्टियाँ होती हैं।

[(आध्यात्मिकादिभेदात्-नवधा तुष्टिः) आध्यात्मिकाद्ययवान्तरभेदान्नवधा तुष्टिर्भवति] आध्यात्मिक आदि अवांतर भेदों से तुष्टि नौ प्रकार की होती है । **[आत्मन्यधिष्ठितत्वादाध्यात्मिकी तुष्टिः स्वात्मस्थितिपरितोपरूपेतियावत्]** यह आत्मा में स्थित रहती है (आत्मा पर आधारित) अपनी स्थिति से

आत्मन्यधिष्ठितत्वादाध्यात्मिकी तुष्टिः स्वात्मस्थितिपरितोपरूपेतियावत्। आदिशब्देन बाह्येषु विषयेषु दोषदर्शनात्तेभ्यो घृणारूपा यद्वा वैराग्यरूपा तुष्टिर्बाह्या । एवं तुष्टिद्वयं नवविधं तत्राध्यात्मिक्याश्चत्वारो भेदाः, बाह्यायाश्च पञ्च भेदाः सन्ति। आध्यात्मिक्यस्तुष्टयः प्रकृत्युपादानकालभागाख्याः क्रमशोम्भः सलिलमोघो वृष्टिरित्यवान्तरनामतश्च प्रसिद्धाः। तासु-प्रकृतिः परिणामिनी नाहं परिणामी किन्त्वहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो न मया तत्परिणामतापः स्वस्मिन् खल्वारोपणीयो नान्यो विवेकदर्शनप्रयासो विधेय इति प्रकृतिविषयाऽम्भो नाम तुष्टिः। प्रव्रज्याव्रतोपादानात् प्राकृतिकसम्बन्धाद्विमुक्तोऽहं नेदानीं तापप्रसंगो न च ध्यानापेक्षेति तूपादानाख्या प्रव्रज्योपादानरूपा सलिलं नाम तुष्टिः ।ध्यानं बहुकालमनुष्ठितं मयाऽतो भविष्यत्येव ब्रह्मसाक्षात्कारोऽलमग्रे ध्यानाभ्यासेनेति कालाख्या खल्वोघः 'ध्यानसंग्रहः' नाम तुष्टि नाम तुष्टिः। स्वतो भाग्यात् साक्षात्कारो भविष्यत्यस्मि ह्यहं भाग्यवान् लब्धसमाधिप्रज्ञोऽहमिति

व्यक्ति संतुष्ट हो जाता है प्रसन्न हो जाता है- मैंने बहुत प्रगति कर ली (अपनी उन्नति देख कर खुश हो जाना आगे के लिए पुरुषार्थ करना छोड देना) यह आध्यात्मिक तुष्टि हुई।[**आदिशब्देन बाह्येषु विषयेषु दोषदर्शनात्तेभ्यो घृणारूपा यद्वा वैराग्यरूपा तुष्टिर्बाह्या**] आदि शब्द से बाह्य विषयों की तुष्टि के संदर्भ में बताते हैं- बाह्य विषयों में दोष दर्शन से जो इंद्रियों के विषय हैं रूप, रस, गंध आदि उनमें दोष देखकर उनके प्रति घृणा हो जाती है या वैराग्य हो जाता है इस प्रकार से यह बाह्य तुष्टि कहलाती है। [**एवं तुष्टिद्वयं नवविधं तत्राध्यात्मिक्याश्चत्वारो भेदाः, बाह्यायाश्च पञ्च भेदाः सन्ति**] इस प्रकार से दोनों तुष्टियों मिलकर के कुल नौ प्रकार की होती हैं, जो आध्यात्मिक तुष्टियाँ हैं उनके चार भेद हैं और जो बाह्य तुष्टि है उनके पाँच भेद हैं। [**आध्यात्मिक्यस्तुष्टयः प्रकृत्युपादानकालभागाख्याः क्रमशोम्भः सलिलमोघो वृष्टिरित्यवान्तरनामतश्च प्रसिद्धाः**] आध्यात्मिक तुष्टियाँ बताते हैं, कौन- कौन सी है? प्रकृति, उपदान, काल, भाग नाम वाली हैं, इनके दूसरे नाम भी हैं- अम्भः , सलिलम, मोघ, वृष्टि ये चार तरह की आध्यात्मिक तुष्टि हो गई। [**तासु-प्रकृतिः परिणामिनी नाहं परिणामी किन्त्वहं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावो न मया तत्परिणामतापः स्वस्मिन् खल्वारोपणीयो नान्यो विवेकदर्शनप्रयासो विधेय इति प्रकृतिविषयाऽम्भो नाम तुष्टिः**] प्रकृति के पदार्थ तो परिणाम वाले हैं (घटना बढ़ना सढ़ना गलना होता रहता है) इनमें परिवर्तन होता रहता है किन्तु मैं तो आत्मा हूँ चेतन शक्ति तो कोई परिणाम वाली होती नहीं अपितु मैं तो नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त स्वभाव वाला हूँ। इसलिए जो भौतिक बस्तुओं में परिणाम होता है उसे अपने उपर आरोपित नहीं करना है, परिणाम ताप आदि को आरोपित नहीं करना है (वस्तु नष्ट हुई मैं नहीं), इतना समझने से बहुत लाभ हो जाएगा, अब मुझे तत्वज्ञान और बडाने का प्रयास नहीं करना है, मुझे समझ में आ गया। यह प्रकृति विषय वाली अम्भ नाम की तुष्टि है। [**प्रव्रज्याव्रतोपादानात् प्राकृतिकसम्बन्धाद्विमुक्तोऽहं नेदानीं तापप्रसंगो न च ध्यानापेक्षेति तूपादानाख्या प्रव्रज्योपादानरूपा सलिलं नाम तुष्टिः**] सन्यास व्रत को धारण करके प्राकृतिक विषयों से मुक्त हो गए (किसी एक मकान-जमीन से अब हम छूट गए, इन सबसे अब कोई संबंध नहीं रहा) अब उनमें किसी प्रकार का राग मोह आदि नहीं रहा, घर-परिवार, जमीन-जायदाद छोड दी अब उनके दु:ख सुख से कोई लेना देना नहीं है, अब न मुझे कोई ध्यान की आवश्यकता है, इस प्रकार से उपादान नामक यह प्रव्रज्या उपादान रूपक ये सलिल नाम की तुष्टि है। [**ध्यानं बहुकालमनुष्ठितं मयाऽतो भविष्यत्येव ब्रह्मसाक्षात्कारोऽलमग्रे**

भाग्याख्या वृष्टिस्तुष्टिः । बाह्यास्तुष्टयस्तु बाह्यविषयोपरमाद् भवन्ति विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनाद् भवन्ति ।तत्र गन्धादिविषयाणामर्जनदोषदर्शनाद् या भवति सा पारं नाम तुष्टिः । या रक्षणदोषदर्शनाद् भवति सुपारं नाम सा तुष्टिः । या क्षयदोषदर्शनाद् भवति पारपारं नाम सा तुष्टिः । या संगदोषदर्शनाद् भोगदोषदर्शनाद् भवति सा तुष्टिरनुत्तमाम्भो नाम । या हिंसादोषदर्शनाद् भवति यन्नानुपहत्य भूतानि भोगसिद्धिरेवम्भूता सा तुष्टिरुत्तमाम्भो नाम ।।४३।।

सिद्धिमाह -

ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा ।।४४।।

(ऊहादिभिः सिद्धिः-अष्टधा) ऊहादिभिरवान्तरभेदैः सिद्धिरष्टधा भवति ।तत्र गुरुमुखादनधीत्य स्वयमध्ययनाज्ज्ञानलाभोऽध्ययनसिद्धिस्तारं नाम । स्वयमप्यध्ययनं न कृत्वा शब्दमेव श्रुत्वा ज्ञानोत्पत्तिः शब्दसिद्धिः सुतारं नाम ।शब्दमप्राप्यापि ज्ञानप्रादुर्भाव ऊहः सिद्धिस्तारतारं नाम ।ऊहनमन्तरेणाप्यभीष्टस्य प्राप्तिसिद्धी रम्यकं नाम । बाह्यपदार्थमनपेक्ष्य नैर्मल्यं शुद्धिसिद्धिः सदा मुदितं नाम । स्वत

ध्यानाभ्यासेनेति कालाख्या खल्वोघः 'ध्यानसंग्रहः' नाम तुष्टि नाम तुष्टिः] एक व्यक्ति ने ३० वर्ष तक ध्यान अभ्यास कर लिया वह सोचता है बहुत कर लिया, अब तो साक्षात्कार हो ही जाएगा। अब और ध्यान करने की क्या आवश्यकता? तो यह काल नामक तुष्टि है इसी का नाम ''ध्यानसंग्रह'' है। **[स्वतो भाग्यात् साक्षात्कारो भविष्यत्यस्मि ह्यहं भाग्यवान् लब्धसमाधिप्रज्ञोऽहमिति भाग्याख्या वृष्टिस्तुष्टिः]** एक कहता है - हमारी किस्मत में लिखा होगा तो भगवान का साक्षात्कार हो ही जाएगा, स्वयं ही अपने भाग्य से परमात्मा का साक्षात्कार हो ही जाएगा, इस प्रकार से समाधि प्रज्ञा (संप्रज्ञात समाधि) को प्राप्त हो गया हूँ, अब असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त हो ही जाएगी। इस प्रकार अपने आपको भाग्यवान मानता है, तो यह भाग्य नामक वृष्टि तुष्टि है। ये चार आध्यात्मिक तुष्टियाँ हुई। **[बाह्यास्तुष्टयस्तु बाह्यविषयोपरमाद् भवन्ति विषयाणामर्जनरक्षणक्षयसंगहिंसादोषदर्शनाद् भवन्ति]** बाह्य तुष्टियाँ तो बाह्य विषयों के उपरम (विराम) से, बाह्य विषयों के भोगों को रोक देने से होती है, विषयों के अर्जन, रक्षण, क्षय, संग, अहिंसा आदि में दोष देखकर इनको छोड़ देते हैं ।**[तत्र गन्धादिविषयाणामर्जनदोषदर्शनाद् या भवति सा पारं नाम तुष्टिः]** गंध आदि विषयों में दोष देखकर के जो संतुष्टि हो जाती है वह पारम नाम की तुष्टि होती है। **[या रक्षणदोषदर्शनाद् भवति सुपारं नाम सा तुष्टिः]** रक्षण दोष को देखकर के जो व्यक्ति बाह्य विषयों का संग्रह करना छोड देता है, यह सुपार नाम की तुष्टि है। **[या क्षयदोषदर्शनाद् भवति पारपारं नाम सा तुष्टिः]** वस्तु के क्षय दोष दर्शन से जो तुष्टि होती है वह पारपार नाम की तुष्टि है। **[या संगदोषदर्शनाद् भोगदोषदर्शनाद् भवति सा तुष्टिरनुत्तमाम्भो नाम]** जो भोगों के संग दोष दर्शन से जो तुष्टि हो जाती है, वह अनुतमम्भो नाम की तुष्टि है । **या हिंसादोषदर्शनाद् भवति यन्नानुपहत्य भूतानि भोगसिद्धिरेवम्भूता सा तुष्टिरुत्तमाम्भो** नाम हिंसा दोष दर्शन से जो तुष्टि होती है, जो व्यक्ति यह सोच लेता है की प्राणियों को दु:ख दिए वगैर तो जी नहीं सकते कुछ न कुछ तो हिंसा करनी पडती है, ऐसा सोचकर के वह लापरवाह हो जाता है फिर आगे और हिंसा करने लग जाता है, ऐसी तुष्टि करलेना यह उतमम्भ नाम की तुष्टि है । ये पाँच बाह्य तुष्टियाँ हुई।।४३।।

एवाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखविमुक्तिरिति विमुक्तिसिद्धिस्त्रिधाविमुक्तिसिद्धिः प्रमोदमुदितमोदमाननामिका ।।४४।।

तत्र सिद्धिषूहादिषु -

नेतरादितरहानेन विना ।।४५।।

(इतरहानेन विना-इतरात्-न) इतरहानेन स्वस्माद्भिन्नमितरं तच्च पूर्ववर्ति तद्धानेन विना तस्य हानमन्तरेण तदपायमन्तरेण तदभावमन्तरेणेतरात् तद्भिन्नादुत्तरवर्तिनो धर्मात् सिद्धिर्न भवति सिद्धिर्नोच्यते । तद्यथा - अध्ययनसिद्धिस्तु गुरुमुखाध्ययनेन विना स्वयमध्ययनाद् भवति तदग्रे शब्दसिद्धिः स्वयमध्ययनेन विना शब्दादेव भवति पुनः शब्दहानेन शब्दमन्तरेण खलूहाद् भवति ह्यूहासिद्धिः। तथैव

सिद्धिमाह - अब सिद्धि के बारे में कहते हैं-

ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा ।।४४।।

सूत्रार्थ= ऊहादि सिद्धियाँ आठ प्रकार की होती हैं।

[(ऊहादिभिः सिद्धिः-अष्टधा) ऊहादिभिरवान्तरभेदैः सिद्धिरष्टधा भवति] उहादि अवांतरभेद से सिद्धि आठ प्रकार की होती हैं । **[तत्र गुरुमुखादनधीत्य स्वयमध्ययनाज्ज्ञानलाभोऽध्ययनसिद्धिस्तारं]** नाम इन आठ सिद्धियों में पहली सिद्धि है- बिना गुरुमुख से अध्ययन किए, स्वयं ही अध्ययन करके व्यक्ति को ज्ञान प्राप्त हो जाता है पूर्वजन्म के संस्कारों के कारण से। यह अध्ययन सिद्धि नाम की तारम नाम सिद्धि हैं। **[स्वयमप्यध्ययनं न कृत्वा शब्दमेव श्रुत्वा ज्ञानोत्पत्तिः शब्दसिद्धिः सुतारं नाम]** व्यक्ति ने स्वयं अध्ययन भी नहीं किया किसी से उपदेश सुनलेने मात्र से ज्ञान प्राप्त हो गया यह शब्द सिद्धि सुतार नाम की सिद्धि है। **[शब्दमप्राप्यापि ज्ञानप्रादुर्भाव ऊहः सिद्धिस्तारतारं नाम]** किसी पुस्तक का अध्ययन भी नहीं किया न ही किसी का उपदेश सुना, स्वयं ऊहा से ज्ञान प्राप्त हो जाना उहसिद्धि तारंतारम नाम वाली है। **[ऊहनमन्तरेणाप्यभीष्टस्य प्राप्तिसिद्धी रम्यकं नाम]** ऊहा भी नहीं बस बैठे बैठे अचानक ही ज्ञान हो गया यह प्राप्ति सिद्धि रम्यक नाम की सिद्धि है। **[बाह्यपदार्थमनपेक्ष्य नैर्मल्यं शुद्धिसिद्धिः सदा मुदितं नाम]** बाह्य पदार्थ की अपेक्षा किए विना ही अपने अंदर से मन की निर्मलता हो जाना, यहा सदा मुदितम नाम की सीधी है। **[स्वत एवाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखविमुक्तिरिति विमुक्तिसिद्धिस्त्रिधाविमुक्तिसिद्धिः प्रमोदमुदितमोदमाननामिका]** बिना किसी विशेष प्रयास के संयोगवश आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनों दुखों से बचे रहना यह विमुक्ति सिद्धि तीन प्रकार की है- प्रमोद, मुदित, मोदमान नाम की सिद्धि हैं।।४४।।

तत्र सिद्धिषूहादिषु - अब इन ऊहादि सिद्धियों के विषय में कहते हैं

नेतरादितरहानेन विना ।।४५।।

सूत्रार्थ=पिछले सिद्धि को छोड़े बिना अगली सिद्धि के धर्म व्यक्ति युक्त नहीं हो सकता।

[(इतरहानेन विना-इतरात्-न) इतरहानेन स्वस्माद्भिन्नमितरं तच्च पूर्ववर्ति तद्धानेन विना तस्य

प्राप्तिसिद्धिः प्राप्तेः पूर्ववर्तिन ऊहहानेन संकल्पमन्तरेणैवाभीष्टप्राप्तिः प्राप्तिसिद्धिर्भवति । अभीष्टप्राप्तिमन्तरेण यन्नैर्मल्यं सा शुद्धिसिद्धिर्न सा प्राप्तिहानेन विना । शुद्धिमनपेक्ष्यैव शोधनहानेन भवत्याध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखनिवृत्तिः सा प्रसादसिद्धिर्दुःखविमुक्तिसिद्धिः कथ्यते । अस्य सूत्रस्य विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथाऽऽलपितं तत्र योगदर्शन प्रतिपादितानां मन्त्रतपःसमाधिसिद्धीनां खण्डनं कृतं सूत्राभिप्रायमविज्ञाय सूत्रस्थस्य 'इतरात्' शब्दात् सांख्यसिद्धितो भिन्नाद् योगसिद्धिर्न सिद्धिरित्युपरिष्टादर्थकल्पनाऽन्यथा कृता । तथा 'इतरहानेन विना' अत्र च 'इतरशब्देन' विपर्ययो गृहीतो नहि विपर्ययोऽनन्तरो य इतरशब्देन लक्ष्येत । अन्यच्च योगदर्शनप्रतिपादितानां मन्त्रादिसम्भूतानां सिद्धीनां मण्डनं सांख्ये कृतम् ''योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः'' (सांख्य० ५.१२९) अत्र मन्त्रादिजाः सिद्धयः सम्पोषिताः । तस्मादयुक्तं व्याख्यानं तस्य ।।४५।।

व्यक्तिसृष्टेर्भेदप्रयोजने उच्येते -

देवादिप्रभेदा* ।

हानमन्तरेण तदपायमन्तरेण तदभावमन्तरेणेतरात् तद्भिन्नादुत्तरवर्तिनो धर्मात् सिद्धिर्न भवति सिद्धिर्नोच्यते] एक को छोड़े बिना ''अपने से जो दूसरी वस्तु है उसका नाम है इतर'' ये स्वयं इतर पूर्ववर्ती है (यदि कक्षा की बात करें तो पहले की कक्षा हुई इतर दूसरी कक्षा हुई स्वयं) पहली कक्षा को छोडे बिना दूसरी कक्षा में विध्यार्थी नहीं बैठ सकता। [**तद्यथा - अध्ययनसिद्धिस्तु गुरुमुखाध्ययनेन विना स्वयमध्ययनाद् भवति तदग्रे शब्दसिद्धिः स्वयमध्ययनेन विना शब्दादेव भवति पुनः शब्दहानेन शब्दमन्तरेण खलूहाद् भवति ह्यूहासिद्धिः**] जैसे अध्ययन सिद्धि बिना गुरुमुख से अध्ययन किए ही सिद्ध हो जाती है, फिर उसके बाद जी शब्द सिद्धि है वह बिना अध्ययन के ही सिद्ध हो जाती है, फिर शब्द के बिना ही व्यक्ति ऊहा से चिंतन करता है और सिद्धि हो जाती है। [**तथैव प्राप्तिसिद्धिः प्राप्तेः पूर्ववर्तिन ऊहहानेन संकल्पमन्तरेणैवाभीष्टप्राप्तिः प्राप्ति सिद्धिर्भवति**] उसी प्रकार से प्राप्ति सिद्धि ऊह के बिना अभीष्ट की प्राप्ति हो जाती है, यह प्राप्ति सिद्धि कहलाती है। [**अभीष्टप्राप्तिमन्तरेण यन्नैर्मल्यं सा शुद्धिसिद्धिर्न सा प्राप्तिहानेन विना**] अभीष्ट प्राप्ति सिद्धि को छोडकर जो नैर्मल्य सिद्धि है शुद्धि सिद्धि जिसका नाम है जब तक प्राप्ति को नहीं छोड़ेगे तब तक यह नहीं मिलेगी। [**शुद्धिमनपेक्ष्यैव शोधनहानेन भवत्याध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखनिवृत्तिः सा प्रसादसिद्धिर्दुःखविमुक्तिसिद्धिः कथ्यते**] शुद्धि के बिना ही शोधन सिद्धि को छोडकर के आध्यात्मिक आधिदैविक आदिभौतिक ये तीन दुःखों की निवृति हो जाती है यह प्रसाद सिद्धि अथवा तीन दुःखों से मुक्ति है ऐसा कहा जाता है। [**अस्य सूत्रस्य विज्ञानभिक्षुभाष्येऽन्यथाऽऽलपितं तत्र योगदर्शन प्रतिपादितानां मन्त्रतपःसमाधिसिद्धीनां खण्डनं कृतं सूत्राभिप्रायमविज्ञाय सूत्रस्थस्य 'इतरात्' शब्दात् सांख्यसिद्धितो भिन्नाद् योगसिद्धिर्न सिद्धिरित्युपरिष्टादर्थकल्पनाऽन्यथा कृता**] स्वामी ब्रह्ममुनि जी टीका करते हैं- इस सूत्र के विज्ञानभिक्षु ने भाष्य में अलग ही व्याख्या की है-योगदर्शन में बताई गई मंत्र तप समाधि आदि सिद्धियों का खण्डन कर दिया है यहाँ। सूत्र के अभिप्राय को न समझते हुए इस में जो ''इतरात'' शब्द है, इस शब्द से सांख्य सिद्धियों से जो भिन्न सिद्धियाँ है योगदर्शन में कही गयी है (योगसिद्धि उन्होने अर्थ ले लिया) उन्होंने कहाँ सांख्य से भिन्न जो योग सिद्धियाँ है वह सिद्धियाँ नहीं होती। ये उन्होंने उपर से कल्पन की जो अयुक्त है।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।।४६-४७।।

अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -

(तत्कृते) पुरुषकृते-पुरुषार्था या खलु (आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दैवादिप्रभेदा सृष्टिः) ब्रह्माणमारभ्य ब्रह्मणः शरीरमारभ्य स्थावरपर्यन्ता दैवादिप्रभेदयुक्ता दैवमनुष्यतिर्यक्स्थावरभेदयुक्ता सृष्टिरस्ति सा (आविवेकात्) विवेकपर्यन्तं प्रवर्तते, यावत् पुरुषस्य विवेको न जायेत तावत् प्रवर्तते । तत्र तत्र योनिषु शरीरधारणाय तथा भोगाय चान्ते विवेकान्मोक्षायापि ।।४६-४७।।

सा च तथाविधभेदयुक्ता सृष्टिः -

ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला ।।४८।।

[**तथा 'इतरहानेन विना' अत्र च 'इतरशब्देन' विपर्ययो गृहीतो नहि विपर्ययोऽनन्तरो य इतरशब्देन लक्ष्येत**] ''अपनी व्याख्या में एक और भूल करदी'' सूत्र में शब्द था ''इतरहानेन विना'' पिछली सिद्धि को छोड़े बिना। यहाँ उन्होने ''इतर'' शब्द से विपर्यय अर्थ ले लिया, ब्रह्ममुनि जी कहते हैं इस ''इतर'' शब्द के आसपास कोई विपर्यय शब्द तो था ही नहीं । जिससे की इतर शब्द से वह अर्थ ले लिया जाए ।[**अन्यच्च योगदर्शनप्रतिपादितानां मन्त्रादिसम्भूतानां सिद्धीनां मण्डनं सांख्ये कृतम् ''योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः'' (सांख्य० ५.१२९) अत्र मन्त्रादिजाः सिद्धयः सम्पोषिताः**] और दूसरी बात यह है कि - योगदर्शन में जो सिद्धियाँ (मंत्र, जप, तप, औषधि) बताई गई, उन सिद्धियों का मंडन सांख्यदर्शन में पहले से ही कर दिया है। (कपिल जी तो उन सिद्धियों को मानते हैं, विज्ञानभिक्षु नहीं मानते यहाँ टकराव हो रहा है सूत्रकार के मत से) सांख्य का प्रमाण दिया - योग सिद्धियाँ भी औषधादि सिद्धियों के समान खण्डन करने योग्य नहीं हैं। इस सूत्र में मंत्र आदि से होने वाली सिद्धि की पुष्टि कि है। **तस्मादयुक्तं व्याख्यानं तस्य** इसलिए उसका व्याख्यान गलत है ।।४५।।

व्यक्तिसृष्टेर्भेदप्रयोजने उच्येते - अब जो व्यक्ति सृष्टि है (एक एक व्यक्ति का निर्माण) इसका भेद और प्रयोजन क्या है? इस विषय को कहते हैं-

देवादिप्रभेदा* ।

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात् ।।४६-४७।।

सूत्रार्थ= देव आदि भेदों वाली, ब्राह्मण से लेकर वृक्ष-वनस्पति पर्यन्त सृष्टि जीवात्मा के लिए है, और यह सृष्टि जब तक विवेक न हो जाए तब तक चलेगी।

[**अनयोः सूत्रयोरेकवाक्यताऽस्ति -**] इन दोनों सूत्रों में एक वाक्यता है, परस्पर संबंध है इसलिए एक साथ व्याख्या की गयी है।

[**(तत्कृते) पुरुषकृते-पुरुषार्था या खलु (आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं दैवादिप्रभेदा सृष्टिः) ब्रह्माणमारभ्य ब्रह्मणः शरीरमारभ्य स्थावरपर्यन्ता दैवादिप्रभेदयुक्ता दैवमनुष्यतिर्यक्स्थावरभेदयुक्ता सृष्टिरस्ति**] जीवात्मा के लिए ये सारी सृष्टि बनाई गयी, ब्रह्मा (चारों वेदों का विद्वान) से लेकर के स्थावर

(ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला) दैवसृष्टिः सत्त्वबहुला भवति ।।४८।।

तमोविशाला मूलतः ।।४९।।

(मूलतः-तमोविशाला) अधोभूता तिर्यकसृष्टिः स्थावरसृष्टिश्च तमोबहुला भवति ।।४९।।

मध्ये रजोविशाला ।।५०।।

(मध्ये रजोविशाला) उभययोर्मध्ये भवा मनुष्यसृष्टिस्तु रजोबहुला भवति ।।५०।।

सैषा प्रकृतेर्विविधाः सृष्टिः कैमर्थिकी भवति । अत्रोच्यते -

कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ।।५१।।

(प्रधानचेष्टा) सैषा विविधसृष्टिरूपा प्रधानचेष्टा प्रकृतिपरिणितिः प्रकृतेः क्रिया (कर्मवैचित्र्यात्) जीवात्कर्मवैविध्याद् भवति (गर्भदासवत्) यथा गर्भदासः स्वभावतो दासः स्वाम्यर्थं विविधं चेष्टते

(पेड पौधे) तक देव (विद्वान-योगी), मनुष्य (सामान्य लोग), तिर्यक (साँप विच्छु कीट पतंग आदि), और वृक्ष वनस्पति आदि इस प्रकार के भेदों से युक्त ये सृष्टि परमात्मा ने वनाई **[सा (आविवेकात्) विवेकपर्यन्तं प्रवर्तते, यावत् पुरुषस्य विवेको न जायेत तावत् प्रवर्तते]** जब तक विवेक उत्पन्न होगा तबतक ये सृष्टि (पुनर्जन्म का चक्कर) चलता रहेगा, जबतक तत्वज्ञान नहीं होगा तब तक ये जन्म-मरण चलता रहेगा। **[तत्र-तत्र योनिषु शरीरधारणाय तथा भोगाय चान्ते विवेकान्मोक्षायापि]** उन-उन योनियों में मनुष्य से लेकर वृक्ष-वनस्पति तक शरीर धारण चलता रहेगा, कर्मफल भोगने के लिए, विवेक प्राप्ति से लेकर मोक्ष प्राप्ति तक के लिए ये सृष्टि चलती रहेगी ।।४६-४७।।

सा च तथाविधभेदयुक्ता सृष्टिः - अलग प्रकार से इस सृष्टि के और भेद बताते हैं-

ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला ।।४८।।

सूत्रार्थ= देवों की सृष्टि सत्व प्रधान होती है।

[(ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला) दैवसृष्टिः सत्त्वबहुला भवति दैवसृष्टि-] यह उच्चस्तर की -ब्राह्मण विद्वान धर्मात्मा परोपकारी सदाचारी आदि की सृष्टि सत्वप्रधान (सत्वगुण की बहुलता से) होती है ।।४८।।

तमोविशाला मूलतः ।।४९।।

सूत्रार्थ=जो नीचे की सृष्टि है घटिया स्तर की है वह तमोगुण प्रधान सृष्टि है।

[(मूलतः-तमोविशाला) अधोभूता तिर्यकसृष्टिः स्थावरसृष्टिश्च तमोबहुला भवति] पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-वनस्पति ये तमोगुण की प्रधानता अधिकता के कारण से है यह अधम सृष्टि है ।।४९।।

मध्ये रजोविशाला ।।५०।।

सैषा प्रकृतेर्विविधाः सृष्टिः कैमर्थिकी भवति । अत्रोच्यते -

सूत्रार्थ= मनुष्य की सृष्टि रजोगुण प्रधान होती है।

[(मध्ये रजोविशाला) उभययोर्मध्ये भवा मनुष्यसृष्टिस्तु रजोबहुला भवति] जो इन दोनों के

बीच में सृष्टि है मध्यम स्तर की (ब्राह्मण विद्वानों से नीचे तथा पशु पक्षियों से नीची) सामान्य मनुष्यों की यह रजोगुण प्रधान है ।।५०।।

[सैषा प्रकृतेर्विविधाः सृष्टिः कैमर्थिकी भवति । अत्रोच्यते -] ये जो प्रकृति से बनी हुई विविध प्रकार की सृष्टि है, यह किस प्रयोजन से (आधार से) बनाई ? इस पर कहते हैं-

कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत् ।।५१।।

सूत्रार्थ=प्रकृति की जगतरूप बनाने की चेष्टा जीवात्मा के भिन्न-भिन्न कर्मों के कारण से है। और प्रकृति की यह चेष्टा स्वभाव से है, गर्भदास के समान।

[(प्रधानचेष्टा) सैषा विविधसृष्टिरूपा प्रधानचेष्टा प्रकृतिपरिणितिः प्रकृतेः क्रिया (कर्मवैचित्र्यात्) जीवात्कर्मवैविध्याद् भवति] ये जो विविध सृष्टि रूप प्रकृति की चेष्टा प्रकृति का जो परिणाम है (सत्व रज तम से अगल अलग प्रकार के शरीर बने, योनियाँ बनीं) जीवात्मा के करोड़ों प्रकार के कर्मों के कारण लाखों प्रकार की योनियाँ बनीं (अनेक कर्मों से एक जाति-आयु-भोग मिलता है) **[(गर्भदासवत्) यथा गर्भदासः स्वभावतो दासः स्वाम्यर्थं विविधं चेष्टते तथैव प्रकृतिरपि स्वभावतः शाश्तिकी पुरुषार्था सती तदर्थं विविधं चेष्टते सृष्टिरूपं गृह्णाना]** प्रकृति क्यों ऐसा करती है इसके लिए एक दृष्टांत दिया गर्भदास का = जिसकी स्वभाव से सेवा की वृत्ती है, वह अपने स्वामी के लिए विविध प्रकर की चेष्टाएं करता है अपने मालिक के लिए काम करता है (जैसे सेविका का बेटा माँ को देखकर सेवा करने लग जाता है उसका स्वभाव बन जाता है सेवा करने का) ऐसे ही प्रकृति स्वभाव से ही जीवात्मा के लिए अनाड़ी काल से विविध प्रकार के शरीर बनाती है सृष्टि रूप को धरण करती हुई जीवात्मा की सेवा के लिए तत्पर रहती है, (स्वयं जड़ होने के कारण खुद तो सुख दुख भोगती नहीं)।।५१।।

[ननु भवतूत्कृष्टयोनौ सत्त्वविशालायां कृतकृत्यता किं पुनर्मोक्षेण। अत्रोच्यते -] एक व्यक्ति प्रश्न करता है - हम ब्राह्मण आदि उत्कृष्ट योनियों में जन्म लेते रहेंगे अच्छे अच्छे कर्म करते रहेंगे सात्विक जीवन जीते रहेंगे इससे ही कृतकृत्यता हो जाएगी, फिर मोक्ष की क्या आवश्यकता? इस पर कहते हैं-

आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः ।।५२।।

सूत्रार्थ=ऊंची-ऊंची योनियों में अधिक सुख होने पर भी उसके बाद भी पुनर्जन्म होगा ही, दुख से पूर्णतया निवृत्ति नहीं हो पाएगी, इसलिए ऊंची- ऊंची योनियाँ त्याज्य हैं।

[(उत्तरोत्तरयोनियोगात्) उत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धात् सत्त्वप्रधानाद्‌ भवेदुत्कृष्टता परन्तु (तत्र-अपि-आवृत्तिः) तत्रापि न स्थिरता किन्त्वावृत्तिः पुनर्जन्म ततोऽपि भवति] अगली-अगली, अच्छी-

(उत्तरोत्तरयोनियोगात्) उत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धात् सत्त्वप्रधानाद्‌ भवेदुत्कृष्टता परन्तु (तत्र-अपि-आवृत्तिः) तत्रापि न स्थिरता किन्त्वावृत्तिः पुनर्जन्म ततोऽपि भवति, तस्मात् (हेयः) सोऽप्युत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धोऽपि त्याज्यः ।।५२।।

अथ च तत्रोत्कृष्टतमयोनौ -

समानं जरामरणादिजं दुःखम् ।।५३।।

(जरामरणादिजं दुःखं समानम्) अधोयोनिमारभ्योत्तरयोनिपर्यन्तं जरामरणजन्मभवं दुःखं समानमेव भवति । तस्मान्नकृतकृत्यताऽत्युत्कृष्टयोनावपि ।।५३।।

ननु भवतूत्कृष्टयोनिं प्राप्यापि ततः पुनरावृत्तिः कार्यत्वान्नहि कार्यशरणं स्थायि भवति किन्तु

अच्छी, ऊंची-ऊंची योनि प्राप्त कर लेने और सत्व की प्रधानता के कारण उत्तमता तो होगी परंतु वह सर्वोत्कृष्ट अवस्था तो नहीं है, वहाँ भी स्थिरता नहीं है, किन्तु आवृति होएगी पुनर्जन्म होता रहेगा, और दुबारा जन्म लेना पडा तो दुःख तो उठाना ही पडेगा (इसलिए दुःख से बचना है तो अगला जन्म लेना बंद करो), [**तस्मात् (हेयः) सोऽप्युत्तरोत्तरयोनिसम्बन्धोऽपि त्याज्यः**] इसलिए एक के बाद अगला जन्म चाहे कितने ही उत्तम हो उनको छोड करके मोक्ष की तैयारी करनी पडेगी मोक्ष में जाना पडेगा तभी सुख होगा, मोक्ष की तुलना में ये सब उच्च उच्च योनियाँ हेय त्याज्य हैं ।।५२।।

अथ च तत्रोत्कृष्टतमयोनौ - और उत्कृष्ट योनियाँ प्राप्त कर लेने के बाद भी कुछ दुःख तो ऐसे हैं जो भोगने ही पड़ेंगे

समानं जरामरणादिजं दुःखम् ।।५३।।

सूत्रार्थ= ऊंची नीची योनियों में जन्म, मरण, बुढ़ापा आदि से होने वाला दुःख समान रूप से भोगना ही पड़ता है।

[**(जरामरणादिजं दुःखं समानम्) अधोयोनिमारभ्योत्तरयोनिपर्यन्तं जरामरणजन्मभवं दुःखं समानमेव भवति**] छोटी योनियों से लेकर के ऊंची ऊंची योनियों तक बुढापा, मृत्यु, जन्म ये दुःख तो सभी योनियों में समान भाव से है इससे बच नहीं सकते। [**तस्मान्नकृतकृत्यताऽत्युत्कृष्टयोनावपि**] इसलिए चाहे आप ऊंची से ऊंची योनि में चले जाए कृतकृत्यता वहाँ भी नहीं है।।५३।।

[**ननु भवतूत्कृष्टयोनिं प्राप्यापि ततः पुनरावृत्तिः कार्यत्वान्नहि कार्यशरणं स्थायि भवति किन्तु कार्याणां कारणे प्रकृतौ लयात्तु न स्यात् पुनरावृत्तिरिति कारणलयात् कृतकृत्यता भवेन्मातुरुत्संगप्राप्तिरिवेत्याकांक्षायामुच्यते** -] एक प्रश्न है। मान लिया कि उत्कृष्ट योनि प्राप्त करने से उससे लौट के आना पडेगा (फिर अगला जन्म लेना पडेगा) ये जो उत्कृष्ट योनि है ये भी तो कार्य है। कार्य कि शरण स्थायी नहीं होती, कार्यों के कारण प्रकृति में लय हो जाने से (कारण में प्रकृति में जाके छुप के बैठ जाएंगे) फिर तो पुनरावृति नहीं होगी ? इस प्रकार से कारण में लय हो जाने से कृतकृत्यता हो जाएगी (हमारा काम पूरा हो जाएगा और हम मोक्ष कि तपस्या से भी बच जाएंगे) ''जैसे बच्चा माँ कि गोद में जाके छुप जाता है'' ऐसे ही हम प्रकृति रूपी माँ कि गोद में जाके छुप जाएँगे तो समस्या खत्म हो जाएगी्‌ इस पर कहते हैं-

कार्याणां कारणे प्रकृतौ लयात्तु न स्यात् पुनरावृत्तिरिति कारणलयात् कृतकृत्यता भवेन्मातुरुत्संगप्राप्तिरिवेत्याकांक्षायामुच्यते -

न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ।।५४।।

(कारणलयात् कृतकृत्यता न) कारणलयात् खलु न कृतकृत्यता पुनरावृत्तेर- भावः (मग्नवत्-उत्थानात्) जलाशये मग्नस्यान्तर्गतस्य यथा पुनरुत्थानं भवति तथैव प्रकृतौ लीनस्याप्युत्थानेन भवितव्यम् ।।५४।।

कुत उत्थानमित्यत्र हेतुः -

न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात् ।।५४।।

सूत्रार्थ= प्रकृति में जाकर छिपने से भी जीव कि पूरी सफलता नहीं होती, उसे फिर पुनर्जन्म में आना ही होगा जैसे गोताखोर पानी में डुबकी मारके फिर ऊपर आता है।

[(कारणलयात् कृतकृत्यता न) कारणलयात् खलु न कृतकृत्यता पुनरावृत्तेरभावः] कारण में लय होने से प्रकृति में जाके छुप जाने से इतने मात्र से कृतकृत्यता नहीं होगी पुनरावृति बंद नहीं होगी फिर जन्म लेना पडेगा **[(मग्नवत्-उत्थानात्) जलाशये मग्नस्यान्तर्गतस्य यथा पुनरुत्थानं भवति तथैव प्रकृतौ लीनस्याप्युत्थानेन भवितव्यम्]** जैसे कोई व्यक्ति तालाब में डुबकी मारता है कुछ समय बाद बाहर आ जाता है, इसी प्रकार से प्रकृति में लीन हुए व्यक्ति का उत्थान होगा ही ।।५४।।

कुत उत्थानमित्यत्र हेतुः -

अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् ।।५५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति के कार्य रूप न होने पर भी उसका कार्य के रूप में रूपान्तरण हो ही जाता है, पराधीन होने से।

[(अकार्यत्वे-अपि तद्योगः) प्रकृतेरकार्यत्वेऽपि, प्रकृतिर्नहि कार्ये किन्तु कारणमस्ति तथापि तस्या अकार्यत्वेऽपि कार्यत्वयोगः कार्ये महदादिभूतभौतिकान्ते परिणमनं परिणामस्वभावोऽस्ति] प्रकृति यद्यपि कार्य रूप नहीं है, प्रकृति कार्य स्वरूप नहीं है किन्तु वह कारण रूप है, उसके कार्यरूप न होने पर भी उसका कार्य स्वरूप बन जाता है कार्य में महतत्व अहंकार इंद्रिय पंचमहाभूत फिर अनेक प्रकार के शरीर ये सब भूत भौतिक पदार्थों में परिवर्तन हो जाता है क्योंकि यह परिवर्तन होना उसका स्वभाव है **[(पारवश्यात्) परवशवर्तित्वात् पुनः कार्यरूपे परिणता भविष्यति हि]** प्रकृति कारण रूप से कार्य रूप क्यों बन जाती है (पारधीन होने से) दूसरे के वश में होने से कार्य रूप में परिवर्तन हो ही जाएगी, **[यः खलु परस्तां कार्ये परिणमयिष्यति तस्मात् कारणस्य कार्यरूपपरिणामधर्मवत्त्वात् कार्यरूपे पुनः पुनः प्रवर्तनात् पुनरुत्थानं भवत्येव न कारणलये कृतकृत्यता]** प्रकृति से जो दूसरा पदार्थ (ईश्वर) है वह कारण रूप से (जगतरूप) कार्य रूप में प्रकृति को परिवर्तित कर ही देगा, इसलिए कारण का कार्य रूप में परिणाम धर्म वाला होने से जो जीवात्मा छुप करके बैठा था प्रकृति में उसे संसार में बापिस आना ही पडेगा, इसलिए प्रकृति में छुपके बैठने

अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात् ।।५५।।

(अकार्यत्वे-अपि तद्योगः) प्रकृतेरकार्यत्वेऽपि, प्रकृतिर्नहि कार्ये किन्तु कारणमस्ति तथापि तस्या अकार्यत्वेऽपि कार्यत्वयोगः कार्ये महदादिभूतभौतिकान्ते परिणमनं परिणामस्वभावोऽस्ति (पारवश्यात्) परवशवर्तित्वात् पुनः कार्यरूपे परिणता भविष्यति हि, यः खलु परस्तां कार्ये परिणमयिष्यति तस्मात् कारणस्य कार्यरूपपरिणामधर्मवत्त्वात् कार्यरूपे पुनः पुनः प्रवर्तनात् पुनरुत्थानं भवत्येव न कारणलये कृतकृत्यता ।।५५।।

यद्वशा प्रकृतिः कथम्भूतः स पर इत्याकांक्षायामुच्यते -

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।।५६।।

से कृतकृत्यता नहीं होगी ।।५५।।

यद्वशा प्रकृतिः कथम्भूतः स पर इत्याकांक्षायामुच्यते - जिसके वश में वह प्रकृति है? वह ''पर'' कैसा है? इस प्रश्न का उत्तर देते हैं-

स हि सर्ववित् सर्वकर्ता ।।५६।।

सूत्रार्थ= जिसके वश में प्रकृति है, वह निश्चित रूप से सर्वज्ञ और सर्व शक्तिमान सृष्टि कर्ता ईश्वर है।

[(सः हि) स पर एव यः प्रकृतिं कार्ये परिणमयति खल्वस्ति (सर्ववित् सर्वकर्ता) सर्वज्ञः सर्वकर्ता च पुरुषविशेषः] वह ''पर'' ही जिसके अधीन प्रकृति है जो कार्य रूप में प्रकृति को परिणित करता है, वह सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है, और वह पुरुष विशेष (ईश्वर) है ।।५६।।

अथ च -

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।।५७।।

सूत्रार्थ= उपर्युक्त गुणों वाले ईश्वर की सत्ता सिद्ध है। (योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष और श्रुतियों के प्रमाण से)

[(ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा) ईदृशस्य सर्वज्ञस्य सर्वकर्तुरीश्वरस्य सिद्धिः सत्ता सिद्धा नित्याऽबाध्याऽनिवार्या न निवार्या] ऐसे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान ईश्वर की सत्ता सिद्ध है जो नित्य है, अबाध्य है उसका कोई खंडन नहीं कर सकता, **[यत्सिद्धये योगिनामबाह्यप्रत्यक्षं प्रथमाध्यायेऽस्माभिः सांख्यैः प्रदर्शितं]** जिस ईश्वर की सिद्धि के लिए, अनुभूति के लिए योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष को हम सांख्य पडने वालों के द्वारा प्रथम अध्याय में दिखलाया गया था । वो ईश्वर यहाँ स्वीकार्य है उसकी सत्ता सिद्ध है **[तथाभूतेन योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण श्रुत्या च सिद्धिः सिद्धा नित्याऽनिवार्याऽस्ति]** उसी प्रकार से योगियों के आंतरिक प्रत्यक्ष से जो ईश्वर सिद्ध होता है वही ईश्वर श्रुति से भी सिद्ध होता है, वो भी नित्य है अनिवार्य है उसका कोई खंडन नहीं कर सकता **''त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'' (तै० उ० १.१)** श्रुति कहती

(सः हि) स पर एव यः प्रकृतिं कार्ये परिणमयति खल्वस्ति (सर्ववित् सर्वकर्ता) सर्वज्ञः सर्वकर्ता च पुरुषविशेषः ।।५६।।

अथ च -

ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा ।।५७।।

(ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा) ईदृशस्य सर्वज्ञस्य सर्वकर्तुरीश्वरस्य सिद्धिः सत्ता सिद्धा नित्याऽबाध्याऽनिवार्या न निवार्या, यत्सिद्धये योगिनामबाह्यप्रत्यक्षं प्रथमाध्यायेऽस्माभिः सांख्यैः प्रदर्शितं तथाभूतेन योगिनामबाह्यप्रत्यक्षेण श्रुत्या च सिद्धिः सिद्धा नित्याऽनिवार्याऽस्ति ''त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि'' (तै० उ० १.१)''स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः ।प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ।'' (श्वेता० ६.१६) ।।५७।।

प्रकृत्याः सृष्टिपरिणामे परप्रयोजनमिति विस्तरेणोच्यते -

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।।५८।।

है - हे परमेश्वर आप हीप्रत्यक्ष ब्रह्म हो ''**स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः।''(श्वेता० ६.१६)** वह सब कुछ (संसार की रचना) करने वाला है,सबको जानने वाला है, ''आत्मयोनि'' जीवात्मा का संचालक (आत्मा को साधन देकर कार्य में प्रवृत करने वाला) है, वह ज्ञानवान है, काल का भी काल है, अनेक गुणों एवं सर्व विद्याओं से युक्त है। प्रधान= प्रकृति, क्षेत्रज्ञ=जीवात्मा इन दोनों का पालक, धारक, पोषक, रक्षक, पति ईश्वर है, तथा संसार-मोक्ष-बंधन-स्थिति (प्रलय) इन सबका कारण भी ईश्वर ही है।।५७।।

[प्रकृत्याः सृष्टिपरिणामें परप्रयोजनमिति विस्तरेणोच्यते -] प्रकृति को जो सृष्टि परिणाम हुआ इसमें प्रकृति का प्रयोजन नहीं है अपितु दूसरे का लाभ है इसलिए जगत विस्तार किया। इस विषय को विस्तार से बताते हैं-

प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वादुष्ट्रकुङ्कुमवहनवत् ।।५८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति से बनी सृष्टि जीवात्मा के लिए है, क्योंकि प्रकृति जड़ है होने से स्वयं भोक्ता नहीं है। जैसे ऊँट केशर का भोक्ता न होते हुए भी अन्य मनुष्यों के लिए केसर को ढोता है।

[(प्रधानसृष्टिः परार्थम्) प्रधानस्य प्रकृतेः सृष्टिः परार्था पुरुषार्था] प्रकृति की जो सृष्टि है वह ''पर'' के लिए पुरुष (जीवात्मा) के लिए है। **[कुतः (स्वतः-अपि-अभोक्तृत्वात्) अपिरत्र हेत्वर्थः]** यहाँ सूत्र में जो ''अपि'' शब्द है यह हेतु अर्थ में है। जीवत्मा के लिए क्यों है?। **[यतः प्रधानं स्वतो न भोक्तृ तस्मात् तस्याभोक्तृत्वात् तत्सृष्टिः परार्था]** (प्रकृति से जो जगत बनाया जाएगा वह प्रकृति के लिए नहीं है किसी और के लिए है भोक्ता के लिए है जो भोगने की क्षमता रखता है जो चेतन है उसके लिए है) क्योंकि प्रकृति स्वयं भोक्ता नहीं है इसलिए उसके भोक्ता रूप न होने से उससे बनी सृष्टि किसी और के लिए है जो चेतन है भोक्ता है । **तत्र दृष्टान्तमाह** इस विषय में एक दृष्टांत देते हैं- **[(उष्ट्रकुङ्कुमवहनवत्)**

(प्रधानसृष्टिः परार्थम्) प्रधानस्य प्रकृतेः सृष्टिः परार्था पुरुषार्था । कुतः (स्वतः-अपि-अभोक्तृत्वात्) अपिरत्र हेत्वर्थः । यतः प्रधानं स्वतो न भोक्तृ तस्मात् तस्याभोक्तृत्वात् तत्सृष्टिः परार्था । तत्र दृष्टान्तमाह (उष्ट्कुङ्कुमवहनवत्) यथा ह्युष्ट्रस्य कुङ्कुमवहनं परार्थं भवति तस्याभोक्तृत्वात्, न ह्युष्ट्रः कुङ्कुमं भुङ्क्ते परन्तु वहति तर्हि तस्य तद् वहनं परार्थमेव तथैव प्रधानस्य सृष्टिरस्वार्था सती परार्थाऽस्ति ।।५८।।

भवतु प्रधानस्य सृष्टिः परार्था तस्याभोक्तृत्वात् परन्तु तदचेतनं सत् कथं परस्यार्थं साधयतीत्याकांक्षायामुच्यते -

अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ।।५९।।

यथा ह्युष्ट्रस्य कुङ्कुमवहनं पराथ५ भवति तस्याभोक्तृत्वात्] (एक व्यापारी को पचास किलो केशर ढोके ले जाना था एक स्थान से दूसरे स्थान पर उसने उस बंडल को ऊँट की पीठ पर रख दिया। क्या व्यापारी ऊँट को केशर खाने देगा? नहीं।) जैसे ऊँट का केशर को ढोना दूसरे के लिए है ऊँट के भोक्ता न होने से, **[न ह्युष्ट्रः कुङ्कुमं भुङ्क्ते परन्तु वहति तर्हि तस्य तद् वहनं परार्थमेव तथैव प्रधानस्य सृष्टिरस्वार्था सती परार्थाऽस्ति]** ऊँट को केशर खाने को नहीं मिलता फिर भी ढोता रहता है, उस समय जो उसका भार ढोना है वह किसी और के लिए है (व्यापारी या ग्राहक के लिए है) उसी प्रकार से प्रधान की जो सृष्टि है वह अस्वार्था=अपने लिए न होते हुए भी जीवात्मा के लिए है।।५८।।

[भवतु प्रधानस्य सृष्टिः परार्था तस्याभोक्तृत्वात् परन्तु तदचेतनं सत् कथं परस्यार्थं साधयतीत्याकांक्षायामुच्यते -] प्रधान की बनी हुई सृष्टि जीवात्मा के लिए हो जाए, क्योंकि प्रधान तो अभोक्ता है जड वस्तु है, परंतु प्रकृति के जड़ होने से उसे कैसे पता किसे क्या देना है? किसका क्या प्रयोजन है? प्रयोजन को कैसे सिद्ध करती है? इस प्रश्न पर कहते हैं-

अचेतनत्वेऽपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य ।।५९।।

सूत्रार्थ= प्रकृति के अचेतन= जड़ होते हुए भी जीव का कल्याण करती है, ईश्वर के अधीन होने से। जैसे दूध जड होते हुए भी गाय की प्रेरणा से बछड़े को तृप्त करता है।

[(प्रधानस्य-अचेतनत्वे-अपि) प्रधानस्याचेतनत्वे सत्यपि (क्षीरवत्चेष्टितम्) यथा क्षीरस्याचेतनस्यापि गवि-गोऽधीनं प्रणयनं वत्सार्थं भवति] प्रधान के अचेतन होने पर भी जैसे दूध भी अचेतन है फिर भी गाय अपने बछडे को आते देख दूध उतार देती है (बछड़े को दूध पिलाने के लिए) गौ चेतन है दूध उसके अधीन है **[तथैव प्रधानस्यापि ब्रह्मणि ब्रह्माधीनं प्रणयनं महत्तत्त्वादिरूपेण परार्थं जीवात्मार्थम्]** उसी प्रकार से प्रकृति तो जड है उस जड प्रकृति का ब्रह्म के अधीन होने से वह प्रक्रतीति को सृष्टि रूप में परिणित कर जीवात्मा के लिए परोस देता है ।।५९।।

अत्रैवान्यो दृष्टान्तो दीयते - इसी विषय में एक और दृष्टांत देते हैं-

कर्मवत् कृष्टे (दृष्टेः?*) र्वा कालादेः ।।६०।।

सूत्रार्थ= अथवा जैसे खेती के कार्य में बोया हुआ बीज कुछ काल के पश्चात किसान के श्रम से अंकुर

(प्रधानस्य-अचेतनत्वे-अपि) प्रधानस्याचेतनत्वे सत्यपि (क्षीरवत्चेष्टितम्) यथा क्षीरस्याचेतनस्यापि गवि-गोऽधीनं प्रणयनं वत्सार्थं भवति तथैव प्रधानस्यापि ब्रह्मणि ब्रह्माधीनं प्रणयनं महत्तत्त्वादिरूपेण परार्थं जीवात्मार्थम् ।।५९।।

अत्रैवान्यो दृष्टान्तो दीयते -

कर्मवत् कृष्टे (दृष्टेः?*) र्वा कालादेः ।।६०।।

(कृष्टेः कर्मवत्-वा) अथवा कृष्टेः कर्मवत् कृषेः कर्मवत्-कृषिकर्मवत् तद्यथा कृषिकर्मणि ''तत्र तस्येव''(अष्टा० ५.१.११६) सप्तम्यां वत्। उप्तं बीजं वृक्षभावाय चेष्टते (कालादेः) कालादिवशात् कालवशात् कृषीवलस्य प्रयत्नवशाच्च तथैव प्रधानमपि सृष्टिकर्मणि सृष्टिभावाय चेष्टते कालादिवशात् कालवशादीश्वरप्रेरणाच्च ।।६०।।

और वृक्ष बन जाता है, वैसे ही प्रकृति कुछ काल के पश्चात ईश्वर के श्रम से जीवों के लिए सृष्टि रूप धारण कर लेती है।

[(कृष्टेः कर्मवत्-वा) अथवा कृष्टेः कर्मवत् कृषेः कर्मवत्-कृषिकर्मवत् तद्यथा कृषिकर्मणि ''तत्र तस्येव''(अष्टा० ५.१.११६) सप्तम्यां वत्] (यहाँ सूत्र में दृष्टांत है ''कर्मवत्'', ''वत्'' प्रत्यय दृष्टांत में उदाहरण के रूप में प्रयुक्त होता है प्रायः प्रथमा में इसका प्रयोग होता है। अष्टाध्यायी के सूत्र ''तत्र तस्येव'' से इसका प्रयोग प्रथमा एवं सप्तमी दोनों में होता है।) यहाँ जो कर्मवत् शब्द है सप्तमी में उदाहरण समझेंगे। तब अर्थ बनेगा कृषि कर्म के तुल्य, कृषि कर्म में, जैसे कृषि कर्म में होता है वैसे यहाँ भी होता है । **[उप्तं बीजं वृक्षभावाय चेष्टते]** बोया हुआ बीज वृक्ष बनने की चेष्टा करता है **[(कालादेः) कालादिवशात् कालवशात् कृषीवलस्य प्रयत्नवशाच्च]** काल के वश अर्थात बीज से वृक्ष बनने में समय एवं किसान का बल लगता है **तथैव प्रधानमपि सृष्टिकर्मणि सृष्टिभावाय चेष्टते कालादिवशात् कालवशादीश्वरप्रेरणाच्च** इसी प्रकार से जो प्रधान है वह बीज रूप है और सृष्टि उसका वृक्ष रूप है, प्रकृति से सृष्टि बनने में समय लगता है और ईश्वर की प्रेरणा भी होती है।।६०।।

[कथं हि प्रकृतिर्विचारशून्या सती काले-ईश्वरप्रेरणाच्चेष्टतेत्याकांक्षायामुच्यते -] प्रकृति जा् व विचार शून्य होते हुए भी उस काल में और ईश्वर की प्रेरणा से वह कैसे क्रिया करती है? ऐसा प्रश्न होने पर उत्तर देते है-

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत् ।।६१।।

सूत्रार्थ= बिना विचार किए स्वभाव से ही प्रकृति की चेष्टा होती है, नौकर के समान।

[(अनभिसन्धानात्-चेष्टितं स्वभावात् भृत्यवत्) प्रधानस्य चेष्टा खल्वविचाराद् भवति स्वभावात् तस्य चेष्टनस्वभाववत्त्वाद् भृत्यवत्] प्रधान (प्रकृति) की जो चेष्टा है जगद्रूप बनने की, उसमें कोई विचार नहीं करना होता है, क्योंकि चेष्टा करना प्रकृति का स्वभाव है, ईश्वर का आदेश होता है वैसा वैसा प्रकृति करती जाती है जैसे स्वामी की इच्छा से भृत्य स्वभाव से कार्य करता जाता है, **[यथा भृत्यस्य चेष्टा**

कथं हि प्रकृतिर्विचारशून्या सती काले-ईश्वरप्रेरणाच्चेष्टतेत्याकांक्षायामुच्यते -

स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत् ।।६१।।

(अनभिसन्धानात्-चेष्टितं स्वभावात् भृत्यवत्) प्रधानस्य चेष्टा खल्वविचाराद् भवति, स्वाम्यर्थं चेष्टनं तस्य स्वभावः स्वाभाविको गुणः। अत्र ''तथैव प्रकृतेश्चेष्टितं संस्कारादेव'' (विज्ञानभिक्षुः) इति जडायां प्रकृतौ संस्कारकथनं नितान्तमसंगतम् ।।६१।।

प्रकृतिचेष्टने हेत्वन्तरमाह-

कर्माकृष्टेर्वाऽप्यनादितः ।।६२।।

(अनादितः कर्माकृष्टेः-अपि वा) अनादितः प्रवाहेणानादितः कर्मभिराकर्षणादपि वा प्रकृतिश्चेष्टते

विचारमन्तरेण विवेचनेन विना स्वभावाद् भवति, स्वाम्यर्थं चेष्टनं तस्य स्वभावः स्वाभाविको गुणः] जैसे भृत्य की चेष्टा स्वभाव से विना विचार किए होती है, अपने स्वामी के लिए चेष्टा करना आरम्भ कर देता है, स्वामी के लिए कार्य करना उसका स्वाभाविक गुण है। **[अत्र ''तथैव प्रकृतेश्चेष्टितं संस्कारादेव'' (विज्ञानभिक्षुः) इति जडायां प्रकृतौ संस्कारकथनं नितान्तमसंगतम्]** विज्ञानभिक्षु भाष्य में लिखा है कि ''प्रकृति कि चेष्टा संस्कार से हैं'' (उसमें अपना ही संस्कार ऐसा है कि वह चेष्टा शुरू कर देती है)। ऐसा उन्होने अर्थ किया है। क्योंकि जड प्रकृति में संस्कार का कथन असंगत है ।।६१।।

प्रकृतिचेष्टने हेत्वन्तरमाह - प्रकृति की चेष्टा में एक और कारण है -

कर्माकृष्टेर्वाऽप्यनादितः ।।६२।।

सूत्रार्थ= जीव अनादिकाल से कर्मों को कर रहा है और उसके कर्मों के आधार पर प्रकृति को जगत रूप ईश्वर बना देता है।

[(अनादितः कर्माकृष्टेः-अपि वा) अनादितः प्रवाहेणानादितः कर्मभिराकर्षणादपि वा प्रकृतिश्चेष्टते सृष्टिरूपतया परिणमते] अनादिकाल से प्रवाह से अनादिकाल से कर्मों के द्वारा आकर्षण से भी प्रकृति सृष्टिरुप बनने की चेष्टा करता है। **[अनादिकालात् कर्मभिराकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्याः परतन्त्रत्वात् परार्थत्वाच्च बलादाकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्मात् प्रकृतिः सृष्टिरूपाय चेष्टत इति यौक्तिकमेतत्]** अनादि काल से कर्मों के द्वारा वो आकृष्ट की जाती है सृष्टि रूप बनने के लिए क्योंकि वह परतंत्र है और (परार्थ) जीवात्मा का प्रयोजन सिद्ध करने वाली होने से, बलात वह आकृष्ट कर ली जाती है, इसलिए यह युक्तियुक्त है की वह पराधीन है और सृष्टि रूप बनने की चेष्टा करती है।।६२।।

[यद्यनादितः कर्मभिराकर्षणात् प्रकृतेः सृष्टिस्तर्हि न मुक्तिः स्यात् । अत्रोच्यते -] यदि अनादिकाल से कर्मों के द्वारा आकर्षित किया जा रहा है और इस आकर्षण से प्रकृति से सृष्टि बनती जा रही है फिर मुक्ति कैसे होगी? इस पर कहते हैं-

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।।६३।।

सूत्रार्थ=तत्वज्ञानी पुरुष को विवेक हो जाने के कारण उसके लिए आगे प्रकरी का शरीर आदि

सृष्टिरूपतया परिणमते। अनादिकालात् कर्मभिराकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्याः परतन्त्रत्वात् परार्थत्वाच्च बलादाकृष्यते हि सा सृष्टिभावाय तस्मात् प्रकृतिः सृष्टिरूपाय चेष्टत इति यौक्तिकमेतत् ।।६२।।

यद्यनादितः कर्मभिराकर्षणात् प्रकृतेः सृष्टिस्तर्हि न मुक्तिः स्यात् । अत्रोच्यते -

विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके ।।६३।।

(विविक्तबोधात्) प्राप्तविवेकस्य पुरुषस्य बोधात् (प्रधानस्य सृष्टिनिवृत्तिः) प्रकृतेः सृष्टिनिवृत्तिः सृष्टिसमाप्तिर्भवति (सूदवत् पाके) यथा पाके सम्पन्ने सति सूदो निवर्तते, इत्थं सृष्टितः प्रकृतिर्निवर्तते ।।६३।।

अथवा -

इतर इतरज्जहाति * तद्दोषात् ।।६४।।

(इतरः-इतरत्-जहाति) प्रधानादितरः पुरुषः खल्वितरत् स्वस्मादितरद् भिन्नं प्रधान त्यजति

निर्माण कार्य बंद हो जाता है, जैसे भोजन तैयार हो जाने पर पाचक रसोई से निवृत हो जाता है।

[(विविक्तबोधात्) प्राप्तविवेकस्य पुरुषस्य बोधात् (प्रधानस्य सृष्टिनिवृत्तिः) प्रकृतेः सृष्टिनिवृत्तिः सृष्टिसमाप्तिर्भवति] जिसे विवेक प्राप्त हो गया और संसार का बोध हो गया की ''यह दु:खदायक है'' फिर ईश्वर प्रकृति से सृष्टि नहीं बनाएगा **[(सूदवत् पाके) यथा पाके सम्पन्ने सति सूदो निवर्तते, इत्थं सृष्टितः प्रकृतिर्निवर्तते]** जैसे पाचक भोजन बनाने वालों के लिए भोजन बना देता है भोजन कर लेने पर भोजन बनाना बंद कर देता है, ऐसे ही जिस जिसको तत्वज्ञान हो जाएगा ईश्वर उस उसके लिए शरीर बनाना जन्म देना बंद कर देता है ।।६३।।

अथवा -

इतर इतरज्जहाति * तद्दोषात् ।।६४।।

सूत्रार्थ=जीवात्मा प्रकृति को छोड़ देता है, उससे अनाशक्त हो जाता है, प्रकृति के दोष देखकर।

[(इतरः-इतरत्-जहाति) प्रधानादितरः पुरुषः खल्वितरत् स्वस्मादितरद् भिन्नं प्रधान त्यजति] प्रधान से जो इतर है (प्रकृति से जो भिन्न है वह है पुरुष वह इतर है) जीवात्मा प्रकृति को छोड़ देता है **[(तद्दोषात्) तस्य प्रधानस्य दोषदर्शनात् ततः प्रधानान्निवर्तते]** वह प्रकृति के दोष देख लेता है इसलिए उसे छोड़ देता है। **[इति तु प्रधानात् पुरुषस्य विमुक्तिः]** इस प्रकार से प्रकृति से जीवात्मा की मुक्ति हो जाती है।।६४।।

एवम् -

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।।६५।।

सूत्रार्थ= प्रकृति और जीवात्मा दोनों की उदासीनता हो जाती है, किन्तु मोक्ष जीवात्मा का ही होता है।

[(द्वयोः-एकतरस्य वा-औदासीन्यम्-अपवर्गः) वाकारोऽत्र चार्थः क्रमबोधने, अर्थाद् द्वयोः-औदासीन्यम्, एकतरस्य-अपवर्गः] यहाँ सूत्र में जो ''व'' शब्द है ये ''च'' अर्थ में है क्रम बतलाने में,

(तद्दोषात्) तस्य प्रधानस्य दोषदर्शनात् ततः प्रधानान्निवर्तते । इति तु प्रधानात् पुरुषस्य विमुक्तिः ।।६४।।

एवम् -

द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः ।।६५।।

(द्वयोः-एकतरस्य वा-औदासीन्यम्-अपवर्गः) वाकारोऽत्र चार्थः क्रमबोधने, अर्थाद् द्वयोः-औदासीन्यम्, एकतरस्य-अपवर्गः । पूर्वोक्तसूत्रद्वयेन द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोर्भवत्यौदासीन्यं परन्तु तत्रौदासीन्ये सति किलापवर्गो मोक्षस्तु खल्वेकतरस्य पुरुषस्य बवतीति सिद्धान्तः । इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च न सम्यग्व्याख्यातम् ।।६५।।

कुतः पुरुषस्यापवर्गो भवति न प्रकृतेः, इत्याकांक्षामुच्यते -

अर्थात कहने का भाव यह है की औदासीनता तो दोनों की हो जाएगी, और मुक्ति एक की होगी (जीवात्मा और प्रकृति में से प्रकृति जड है बंधन का अनुभव नहीं करती जबकि जीवता चेतन है बंधन का अनुभव करता है इसलिए मुक्ति चाहता है जैसे - एक खूँटे पर रस्सी से गाय बंधी थी, जब रस्सी को खोला गया तो गाय और रस्सी अलग अलग हो गए लेकिन मुक्ति तो गाय की हुई न?)। **[पूर्वोक्तसूत्रद्वयेन द्वयोः प्रकृतिपुरुषयोर्भवत्यौदासीन्यं परन्तु तत्रौदासीन्ये सति किलापवर्गो मोक्षस्तु खल्वेकतरस्य पुरुषस्य भवतीति सिद्धान्तः]** पूर्वोक्त दो सूत्रों में (जो चर्चा चल रही थी) प्रकृति और जीवात्मा का दोनों की औदासीनता हो जाती है अलग अलग हो जाते हैं फिर इन दोनों के अलग अलग हो जाने पर मोक्ष तो केवल एक (पुरुष) का होता है ये सिद्धान्त जानना चाहिए। क्योंकि बंधन और मुक्ति का अनुभव जीवात्मा ही करता है। **[इदं सूत्रमनिरुद्धवृत्तौ विज्ञानभिक्षुभाष्ये च न सम्यग्व्याख्यातम्]** इस सूत्र की व्याख्या अनिरुद्धवृत्ति में और विज्ञानभिक्षु भाष्य में ठीक-ठीक नहीं की गयी है।।६५।।

कुतः पुरुषस्यापवर्गो भवति न प्रकृतेः, इत्याकांक्षामुच्यते - पुरुष की ही मुक्ति क्यों होती है प्रकृति की क्यों नहीं ? ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर ये उत्तर दिया जाता है-

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यतेऽप्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्येवोरगः ।।६६।।

सूत्रार्थ= अविवेकी व्यक्ति के लिए सृष्टि बनाना रूप प्रकृति का कार्य चालू रहने के कारण प्रकृति की मुक्ति नहीं हो पाती, जैसे रस्सी का सही स्वरूप न जानने वाले व्यक्ति का रस्सी को साँप समझने का भ्रम दूर नहीं होता।

[(अन्यसृष्ट्युपरागे-अपि) अपिरत्र हेतुप्रदर्शनार्थः यहाँ जो ''अपि'' शब्द है यह हेतु को दर्शाने के लिए है। **यद्यपि प्रकृतिर्जातविवेकं प्रति सृष्टितो निवर्तते तदा भवति ह्युदासीना परन्तु योऽन्योऽविवेकयुक्तस्तस्मै सृष्टिविषयकोपरागस्तु तस्याः खल्वस्ति हि]** यद्यपि प्रकृति उस व्यक्ति के प्रति सृष्टि बनाने से निवृत हो जाती है, अविवेक से युक्त जो व्यक्ति है उनका सृष्टिविषयक राग उस प्रकृति के प्रति तो बना ही रहेगा, प्रकृति उनके प्रति भोग भूगाते रहेगी, **[तस्मादविवेकयुक्तात् (न विरज्यते) सा न विरज्यते-**

अन्यसृष्ट्युपरागेऽपि न विरज्यतेऽप्रबुद्ध+रज्जुतत्त्वस्येवोरगः ।।६६।।

(अन्यसृष्ट्युपरागे-अपि) अपिरत्र हेतुप्रदर्शनार्थः । यद्यपि प्रकृतिर्जातविवेकं प्रति सृष्टितो निवर्तते तदा भवति ह्युदासीना परन्तु योऽन्योऽविवेकयुक्तस्तस्मै सृष्टिविषयकोपरागस्तु तस्याः खल्वस्ति हि, तस्मादविवेकयुक्तात् (न विरज्यते) सा न विरज्यते-सृष्टितो नापवृज्यते, न तस्या अपवर्गो मोक्ष इत्यर्थः । कथमिव । उच्यते (अप्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्य-इव-उरगः) उरगः-सर्पः-रज्जुसर्पः-रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथाऽज्ञातरज्जुस्वरूपस्य पुरुषस्य न निवर्तते, एवं ह्यजातविवेकं प्रति प्रकृतिः सृष्टिरचनातो न विरज्यते, विमोक्षस्तु जातविवेकस्यैव भवति । तस्मात् पुरुषस्यैव मोक्षे सिद्धान्तः ।।६६।।

अपरञ्च -

कर्मनिमित्तयोगाच्च ।।६७।।

सृष्टितो नापवृज्यते, न तस्या अपवर्गो मोक्ष इत्यर्थः] जो अविवेकी व्यक्ति है उसके प्रति प्रकृति को कार्य करना ही करना है, इसलिए सृष्टि बनाने के कार्य से वह विरक्त नहीं होती, इसलिए उसका अपवर्ग नहीं होता मोक्ष नहीं होता। **[कथमिव। उच्यते (अप्रबुद्धरज्जुतत्त्वस्य-इव-उरगः) उरगः-सर्पः-रज्जुसर्पः-रज्ज्वां सर्पभ्रमो यथाऽज्ञातरज्जुस्वरूपस्य पुरुषस्य न निवर्तते, एवं ह्यजातविवेकं प्रति प्रकृतिः सृष्टिरचनातो न विरज्यते]** एक दृष्टांत देते हैं- जैसे रस्सी में साँप का भ्रम हो जाता है कोई व्यक्ति रात्री में रस्सी को नहीं समझ पाता साँप का भ्रम हो जाता है (रस्सी को ही साँप समझता है) जिसको रस्सी का स्वरूप पता नहीं है वह उसे साँप ही समझता रहेगा **[विमोक्षस्तु जातविवेकस्यैव भवति]** जिसको तत्वज्ञान नहीं होता, जिसका विवेक उत्पन्न नहीं हुआ, उसको सृष्टि में सुख का भ्रम रहता है, जिसको तत्वज्ञान हो जाता है उसकी मुक्ति हो जाती है। तस्मात् पुरुषस्यैव मोक्षे सिद्धान्तः इसलिए पुरुष के ही मोक्ष का सिद्धान्त है ।।६६।।

अपरञ्च -

कर्मनिमित्तयोगाच्च ।।६७।।

सूत्रार्थ= सकाम कर्मों के कारण प्रकृति का जीवों के साथ बन्धन होने से ही प्रकृति सृष्टि निर्माण कार्यों से निवृत नहीं हो पाती।

[(कर्मनिमित्तयोगात्-च) अथ च प्रकृतिर्न विरज्यतेऽत्रायमपि हेतुरन्यो यत् कर्मनिमित्तः खलु योगः सम्बन्धः प्रकृत्या अस्ति] प्रकृति अपने कार्य से विरक्त नहीं होती। इस विषय में एक हेतु है कि प्रकृति के साथ जीवात्मा का जो योग (सम्बंध) है वह कर्मों के कारण से है, **[यस्य हि कर्माविशिष्टं तस्य फलभोगाय प्रकृतियोगेन भवितव्यमेंव]** जिस जीवात्मा के सकाम कर्म अभी बचे हुए हैं फल भोगने के लिए तो उस जीवात्मा को फल भुगाने के लिए प्रकृति का संयोग होना ही पड़ेगा, **तेन सह प्रकृतिर्युङ्क्ते हि ''कर्माकृष्टेर्वाप्यनादितः'' (सांख्य० ३.६२) कर्मभिस्तस्या आकृष्टत्वाच्च** उस जीवात्मा के साथ प्रकृति तो जुुगी ही जिसका सकाम कर्म अभी बाकी है फल भोगने के लिए ''जीवात्मा के कर्मों कि बजह से प्रकृति को आकृष्ट कर ही लिया जाता है ''। **[तस्मात् प्रकृतेर्नापवर्गः किन्तु पुरुषस्यैव भवति]** इसलिए प्रकृति का

(कर्मनिमित्तयोगात्-च) अथ च प्रकृतिर्न विरज्यतेऽत्रायमपि हेतुरन्यो यत् कर्मनिमित्तः खलु योगः सम्बन्धः प्रकृत्या अस्ति, यस्य हि कर्माविशिष्टं तस्य फलभोगाय प्रकृतियोगेन भवितव्यमेव, तेन सह प्रकृतिर्युङ्क्ते हि ''कर्माकृष्टेर्वाप्यना- दितः'' (सांख्य० ३.६२) कर्मभिस्तस्या आकृष्टत्वाच्च । तस्मात् प्रकृतेर्नापवर्गः किन्तु पुरुषस्यैव भवति ।।६७।।

प्रकृतिः परार्था, न हि स्वार्था पुनः स्वार्थहीना निरपेक्षा सती प्रकृतिः कमपि पुरुषं प्रति कथं प्रवर्तते तदेतदन्यथा युक्त्या प्रदर्श्यते -

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।।६८।।

(नैरपेक्ष्ये-अपि) प्रकृतेर्निरपेक्षत्वेऽपि न केनापि सह प्रकृतेर्विशिष्टा सम्बन्धापेक्षा तस्याः समानभावेन परार्थत्वात् । तथापि (प्रकृत्युपकारे) सृष्टिरूपत्वेन प्रकृतिर्यं कमप्युपकरोति यं कमपि

छुटकारा नहीं होता जीवात्मा का ही होता है।।६७।।

[प्रकृतिः परार्था, न हि स्वार्था पुनः स्वार्थहीना निरपेक्षा सती प्रकृतिः कमपि पुरुषं प्रति कथं प्रवर्तते तदेतदन्यथा युक्त्या प्रदर्श्यते -] प्रकृति परार्थ है, अपने लिए न होते हुए भी वो अपने लिए नहीं चाहती हुई फिर प्रकृति किसी पुरुष के लिए कैसे प्रवृत्त हो जाती है इस बात को एक और युक्ति से कहते हैं-

नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम् ।।६८।।

सूत्रार्थ= प्रकृति की इच्छा रहित होते हुए भी जीवों के लिए शरीर निर्माण आदि का कार्य करती है, उसमें जीवों का अविवेक ही कारण है।

[(नैरपेक्ष्ये-अपि) प्रकृतेर्निरपेक्षत्वेऽपि न केनापि सह प्रकृतेर्विशिष्टा सम्बन्धापेक्षा तस्याः समानभावेन परार्थत्वात्] प्रकृति के निरपेक्ष होते हुए भी किसी के साथ प्रकृति का कोई विशेष सम्बंध की अपेक्षा नहीं है इसलिए समान रूप से सबके लिए परोपकार करना उसका काम है।**[तथापि (प्रकृत्युपकारे) सृष्टिरूपत्वेन प्रकृतिर्यं कमप्युपकरोति यं कमपि पुरुषं प्रति प्रवर्तते तत्र (अविवेकः-निमित्तम्) अविवेकस्तस्य पुरुषस्य निमित्तमस्ति]** सृष्टि के रूप में प्रकृति जिस किसी भी पुरुष का उपकार करती है (जिस किसी को भोग देती है) इसमें क्या कारण है? इसमें उस पुरुष का अविवेक ही कारण है।।६८।।

पुनश्च -

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि विवृत्तिश्चारितार्थ्यत्वात् ।।६९।।

सूत्रार्थ= नर्तकी के समान जैसे नर्तकी नृत्य दिखाकर चली जाती है वैसे ही प्रकृति अपने कार्य को चरितार्थ करके निवृत्त हो जाती है।

[(प्रवृत्तस्य-अपि) अविवेकिनं पुरुषं प्रति प्रवृत्तस्यापि प्रधानस्य (चारितार्थ्यात् -निवृत्तिः) निवृत्तिर्भवति चरितार्थत्वात् समाप्तप्रयोजनत्वात् स्वरूपप्रदर्शनेन कृतकार्यत्वात्] अविवेकी पुरुष के प्रति जो प्रकृति प्रवृत्त होने पर (अपना स्वरूप दिखने के लिए) निवृत्त हो जाती है चरितार्थ हो जाती है प्रकृति स्वरूप दिखाकर स्व प्रयोजन को सिद्ध करते हुए अपने इस कार्य की सिद्धि कर लेती है (जीवात्मा को बता देती है मुझमें कितना दु:ख और कितना सुख है) **[(नर्तकीवत्) यथा नर्तकी पारिषद्यान् प्रति नृत्यप्रदर्शनाय**

पुरुषं प्रति प्रवर्तते तत्र (अविवेकः-निमित्तम्) अविवेकस्तस्य पुरुषस्य निमित्तमस्ति ।।६८।।

पुनश्च -

नर्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि विवृत्तिश्चारितार्थ्यत्वात् ।।६९।।

(प्रवृत्तस्य-अपि) अविवेकिनं पुरुषं प्रति प्रवृत्तस्यापि प्रधानस्य (चारितार्थ्यात् -निवृत्तिः) निवृत्तिर्भवति चरितार्थत्वात् समाप्तप्रयोजनत्वात् स्वरूपप्रदर्शनेन कृतकार्यत्वात् (नर्तकीवत्) यथा नर्तकी पारिषद्यान् प्रति नृत्यप्रदर्शनाय प्रवृत्ताऽपि समाप्तनृत्यकृत्या नृत्येन स्वरूपं प्रदर्शितवती सती निवर्तते ।।६९।।

अथ च तन्निवर्तनमपरदृष्टान्तेन पोष्यते -

प्रवृत्ताऽपि समाप्तनृत्यकृत्या नृत्येन स्वरूपं प्रदर्शितवती सती निवर्तते] जैसे कहीं नर्तकी नृत्य करती है सभा में जो बैठे लोग है उनके प्रति नृत्य दिखलाती हुई कुछ कल बाद निवृत हो जाती है।।६९।।

अथ च तन्निवर्तनमपरदृष्टान्तेन पोष्यते -प्रकृति बापिस हट जाती है लौट जाती है, इस बात को किसी और दृष्टांत से समझाते हैं-

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ।।७०।।

सूत्रार्थ=प्रकृति के दोष जीवात्मा को ज्ञात हो जाने पर फिर उस जीवात्मा के लिए प्रकृति आगे शरीर आदि का निर्माण नहीं करती, कुलवधू के समान।

[(दोषबोधे-अपि) अपिशब्दो हेत्वन्तरे दृष्टान्तान्तरे] च सूत्र में ''हेतु'' शब्द दृष्टांत एवं हेतु शब्द के लिए प्रयुक्त हुआ है। **[प्रकृतिनिवर्तनेऽपरोऽयमपि हेतुर्दृष्टान्तश्च यत् खलु दोषबोधेपुरुषेण प्रधानस्य दोषे ज्ञातेपरिणामित्वपुनर्जन्मनिमित्तत्वदुःखरूपत्वादिके दोषे ज्ञाते सति (प्रधानस्य उपसर्पणं न) प्रकृतेर्ज्ञातदोषं पुरुषं प्रति नोपसर्पणमुपगमनं भवति]** प्रकृति के निवृत्त हो जाने में (प्रकृति जीवात्मा के लिए निवृत हो जाने पर बार बार शरीर नहीं बनाती) एक दृष्टांत और भी है कि दोष जान लेने पर पुरुष के द्वारा प्रधान के दोष जान लेने पर, क्या क्या दोष जाने? प्रकृति परिणामिनी है, दूसरा है-यदि हम प्रकृति के भोग भोगते जाएंगे तो उससे हमारे संस्कार बनते जाएंगे, जब राग-द्वेष के संस्कार बनेगे तो ये संस्कार बार बार जन्म-मरण के चक्कर में घसीट लाएँगे, फिर सकाम कर्म करेंगे, उससे फिर जन्म होगा। और प्रकृति दुःख रूप है। इस प्रकार प्रकृति के दोष ज्ञात हो जाने पर, जिस व्यक्ति को प्रकृति के दोष समझ में आ गए फिर उसके सामने यह प्रकृति नहीं जाती, उससे दूर भागती है, **[न हि तदा प्रकृतिस्तत्समीपमुतिष्ठते किन्तु ततो निवर्तते]** हि फिर प्रकृति उसके समीप नहीं जाती उससे दूर भागती है। **[तत्र दृष्टान्तः (कुलवधूवत्) यथा कुलवधू प्रकटितदोषा पुनः पुरुषं प्रति नोपसर्पति किन्तु सङ्कुचति स्वात्मानं सङ्कोचयति निवर्तते हि ततस्तथैव प्रकृतिर्ज्ञातदोषाय सङ्कुचति स्वात्मानं न प्रकटयति ततोऽपसरति हि]** दृष्टांत है जैसे कुलवधू के दोष प्रकट हो जाने पर वह पति से छुपती रहती है उससे डोर भागती है सामने आने में संकोच करती है। उसी प्रकार से प्रकृति के दोष ज्ञात हो जाने पर पुरुष के सामने आने से संकोच करती है, वह आगे उसके भोग के लिए

दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत् ।।७०।।

(दोषबोधे-अपि) अपिशब्दो हेत्वन्तरे दृष्टान्तान्तरे च । प्रकृतिनिवर्तनेऽपरोऽयमपि हेतुर्दृष्टान्तश्च यत् खलु दोषबोधे-पुरुषेण प्रधानस्य दोषे ज्ञाने-परिणामित्वपुनर्जन्मनिमित्तत्वदुःखरूपत्वादिके दोषे ज्ञाते सति (प्रधानस्य उपसर्पणं न) प्रकृतेर्ज्ञातदोषं पुरुषं प्रति नोपसर्पणमुपगमनं भवति, न हि तदा प्रकृतिस्तत्समीपमुतिष्ठते किन्तु ततो निवर्तते हि । तत्र दृष्टान्तः (कुलवधूवत्) यथा कुलवधू प्रकटितदोषा पुनः पुरुषं प्रति नोपसर्पति किन्तु सङ्कुचति स्वात्मानं सङ्कोचयति निवर्तते हि ततस्तथैव प्रकृतिर्ज्ञातदोषाय सङ्कुचति स्वात्मानं न प्रकटयति ततोऽपसरति हि । उक्तं यथा नारदीये ''सविकाराऽपि मौढ्येन चिरं भुक्त्वा गुणात्मना । प्रकृतिर्ज्ञातदोषेयं लज्जयैव निवर्तते'' ।।७०।।

शरीर नहीं बनाती। [**उक्तं यथा नारदीये ''सविकाराऽपि मौढ्येन चिरं भुक्त्वा गुणात्मना। प्रकृतिर्ज्ञातदोषेयं लज्जयैव निवर्तते''**] जैसा कि नारद स्मृति में कहा है -विकार सहित होते हुए भी अविद्या (मूर्खता) के कारण जीवात्मा इसे गुणवान मानता हुआ भोगता है। प्रकृति के दोष ज्ञात हो जाने पर वह लज्जा का अनुभव करती है और जीवात्मा के सामने नहीं जाती फिर जीवात्मा का मोक्ष हो जाता है ।।७०।।

[**यदि प्रकृतिरेव ज्ञातदोषाज्जातविवेकान्निवर्ततेऽज्ञातदोषमजातविवेकं प्रति च प्रवर्तते तर्हि पुरुषे कथं व्यपदिश्यते बन्धो बन्धाच्च मोक्षः। अत्रोच्यते -**] यदि प्रकृति ही उस पुरुष से दूर भागती है जिसको उसके दोष ज्ञात हो गए फिर जिसको दोष ज्ञात नहीं हुए उसके प्रति तो यह कार्य करती रहती है और तत्वज्ञानी से दूर भागती है। जब प्रकृति ही सब कुछ कर रही है, तो शंका यह है कि - पुरुष में बंधन क्यों कहा गया ? बंधन से मोक्ष हो गया? (जब कार्य सारा प्रकृति कर रही है तो फिर पुरुष को बीच में क्यों लिया जा रहा कि वह बंध गया-मोक्ष हो गया)- इसका उत्तर देते है-

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।।७१।।

सूत्रार्थ= पुरुष का बंधन और मोक्ष दोनों एक नियम से नहीं है, स्वाभाविक नहीं है। अविवेक के विना बंधन नहीं होगा, विवेक एक विना मोक्ष नहीं होगा। इसलिए दोनों ही कारण पूर्वक है नैमितिक हैं।

[**(पुरुषस्य बन्धमोक्षौ-एकान्ततः-न) पुरुषस्य बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च खल्वेकान्ततस्तत्स्वरूपतो न स्तः**] पुरुष का जो बंधन है, फिर प्रकृति से छुट भी गया ये दोनों ही चीजे स्वभाव से नहीं है (न तो जीवात्मा का बंधन स्वाभाविक है और न ही मोक्ष स्वाभाविक है- क्योंकि जिसका जो स्वभाव होता है वह उससे कभी हटता नहीं)। [**उक्तं यथापूर्वम् ''व्यावृत्तोभयरूपः'' (सांख्य- १.१६०) यतः (अविवेकात्-ऋते) अविवेकमन्तरेण पुरुषे बन्धस्य पुनस्ततो मोक्षस्यानुपपत्तेः**] जैसा कि सांख्यदर्शन में पहले भी कह ही चुके है'' दोनों ही रूपों से जीवात्मा अलग हैं', बल्कि निमित्त से है क्या निमित है? अविवेक के कारण पुरुष बंधन में आता है, जब तक विवेक उत्पन्न नहीं होगा तब तक मुक्ति नहीं होगी, [**अविवेकमबलम्ब्य हि पुरुषो बध्यते, अविवेकहानाच्च पुनर्बन्धान्मुच्यते**] अविवेक के आधार पर पुरुष बंध जाता है, अविवेक के हट जाने पर तत्वज्ञान हो जाने पर प्रकृति से मुक्त हो जाता है ।।७१।।

यदि प्रकृतिरेव ज्ञातदोषाज्जातविवेकान्निवर्ततेऽज्ञातदोषमजातविवेकं प्रति च प्रवर्तते तर्हि पुरुषे कथं व्यपदिश्यते बन्धो बन्धाच्च मोक्षः । अत्रोच्यते -

नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते ।।७१।।

(पुरुषस्य बन्धमोक्षौ-एकान्ततः-न) पुरुषस्य बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च खल्वेकान्ततस्तत्स्वरूपतो न स्तः । उक्तं यथापूर्वम् ''व्यावृत्तोभयरूपः'' (सांख्य- १.१६०) यतः (अविवेकात्-ऋते) अविवेकमन्तरेण पुरुषे बन्धस्य पुनस्ततो मोक्षस्यानुपपत्तेः, अविवेकमबलम्ब्य हि पुरुषो बध्यते, अविवेकहानाच्च पुनर्बन्धान्मुच्यते ।।७१।।

अतः -

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत् ।।७२।।

अतः -

प्रकृतेराञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत् ।।७२।।

सूत्रार्थ= जीवात्मा का प्रकृति के साथ स्वभाव से ही सम्बन्धी पा़ोसी होने से वह प्रकृति से बंध भी जाता है, और छुट भी जाता है। पशु के समान।

[(प्रकृतेः- आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) पुरुषस्य यो बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च प्रकृतेः पुरुष आञ्जस्यादनायासात् ससंगः सहयोगी खल्वस्ति] पुरुष का जो बंधन है और फिर उस बंधन से मोक्ष है, पुरुष प्रकृति का (स्वभाव से) अनायास ही संग सहयोगी है **[तस्य ससंगत्वात् संगित्वात् सहयोगित्वात् पशुवद्‌ बन्धमोक्षौ भवतः]** क्योंकि वह उसके पास ही रहता है संग सहयोगी होने से वह पशु के समान बंध भी जाता है और मोक्ष भी हो जाता है, **[यथा पशुर्यूपसन्निधानाद् रज्वा बध्यते पुनश्च ततो विमुच्यते]** जैसे पशु के पास खूंटा है, रस्सी है तो पशु कभी बंध जाता है कभी छूट जाता है, पास रहने से। (ऐसे उसका बंधन मोक्ष होता रहता है)। **[अन्यो व्याख्यामार्गः-(प्रकृतेः-आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) प्रकृतेः खल्वाञ्जस्यादनायासान्निसर्गतः परुषेण सह संगोऽस्ति]** अन्य व्याख्या है- प्रकृति का अनायास ही स्वभाव से ही पुरुष के साथ उसका संग है (पडोसी होने से) **[तस्याः परार्थत्वात् पुरुषार्थत्वात् पुरुषसंगत्वात् पुरुषसहयोगिनीत्वात् पशुवद् बन्धः पुनर्मोक्षश्चास्ति]** क्योंकि प्रकृति परार्थ है पुरुष के लिए होने से, पुरुष का संग होने से, पुरुष का सहयोगिनी होने से, इसलिए पशु के समान उसका बंधन हो जाता है और उसका मोक्ष हो जाता है यथा। **[पशुः परार्थः परो जनस्तत्स्वामी तत्पालने बद्धो भवति त्यागे च विमुक्तो भवति तथैव प्रकृत्या सहात्मानं बद्धं तत्वसंगेन विना मुक्तं चानुभवति]** पशु परार्थ है (पशु कि सवारी पशु स्वयं थोडी करेगा, कोई और करेगा) स्वामी के लिए है, जैसे कोई व्यक्ति पशु पाल लेता है तो उसके पालन में बो बंध जाता है, और पशु को छोड दे तो मुक्त हो जाता है। ऐसे ही जो व्यक्ति संसार में सुख देखता है बो प्रकृति के साथ बंध जाता है, और जब संसार में दुख देखता है तो मुक्त हो जाता है ।।७२।।

[तत्र बन्धमोक्षयोर्विवेकाविवेकप्रकारः प्रदर्श्यते -] बंध और मोक्ष का विवेक और अविवेक

(प्रकृतेः-आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) पुरुषस्य यो बन्धः पुनस्ततो मोक्षश्च प्रकृतेः पुरुष आञ्जस्यादनायासात् ससंगः सहयोगी खल्वस्ति तस्य ससंगत्वात् संगित्वात् सहयोगित्वात् पशुवद् बन्धमोक्षौ भवतः, यथा पशुर्यूपसन्निधानाद् रज्वा बध्यते पुनश्च ततो विमुच्यते । अन्यो व्याख्यामार्गः-(प्रकृतेः-आञ्जस्यात् ससंगत्वात् पशुवत्) प्रकृतेः खल्वाञ्जस्यादनायासान्निसर्गतः परुषेण सह संगोऽस्ति तस्याः परार्थत्वात् पुरुषार्थत्वात् पुरुषसंगत्वात् पुरुषसहयोगिनीत्वात् पशुवद् बन्धः पुनर्मोक्षश्चास्ति यथा । पशुः परार्थः परो जनस्तत्स्वामी तत्पालने बद्धो भवति त्यागे च विमुक्तो भवति तथैव प्रकृत्या सहात्मानं बद्धं तत्संगेन विना मुक्तं चानुभवति ।।७२।।

का प्रकार दिखलाया जाता है-

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्् विमोचयत्येकेन रूपेण ।।७३।।

सूत्रार्थ=प्रकृति प्रधान जीवात्मा को अपने सात रूपों से बांध लेती है, जैसे मक्ाी जाल को बिछाके मक्खी मच्छर को फँसाती है, जब मुक्त करती है जीवात्मा को तो एक रूप से मुक्त करती है।

[(प्रधानं सप्तभिः-रूपैः-आत्मानं बध्नाति)महत्तत्त्वाहंकारपञ्चतन्मात्रैः सप्तभिरवस्थान्तरभूतैर्विकृतिरूपैर्जीवात्मानं बध्नाति यतस्तत एव सान्तःकरणमुभयमिन्द्रियं निष्पद्यते] प्रकृति कैसे बांधती है ये बताते हैं- महतत्व, अहंकार, पाँच तन्मात्राएं इन सात वस्तुएं के द्वारा प्रकृति के ये भिन्न-भिन्न सात अवस्थाएं हैं, इन अवस्थाओं के द्वारा जीवात्मा को बांध लेती है, इन्ही सात अवस्थाओं से दोनों प्रकार कि इंद्रियाँ बनती हैं। **[उच्यते हि''प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्'']** ये सांख्य में पहले भी कहा था- ''प्रकृति से महतत्व महतत्व से अहंकार अहंकार से पाँच तन्मात्राएं दोनों प्रकार कि इंद्रियाँ'' **[(सांख्य० १.६१) कथमिव (कोशकारवत्) कोशकार इव तन्तुकीट]** इव प्रकृति जीवात्मा को कैसे बांधती है?- कोशकार के तंतुकीट के समान **[यथा तन्तुकीटस्तन्तुर्भिबध्नाति]** जैसे तन्तुकीट तन्तुओं के द्वारा बंध जाता है (जैसे मकडी जाला बुनती है उस जाल में मक्खी, मछर फंस जाते हैं, वैसे ही प्रकृति रूप रस गंध के जल में जीवात्मा फंस जाता है),**[दृष्टान्तस्यैक एवांशोऽत्र बन्धनमेवाभिप्रेयते न सर्वांशत्वं स्वबन्धनमपि यद्वा प्रकृतेरात्मभूतः पुरुषस्तमात्मभूतं प्रकृतिर्बध्नाति]** कोई भी दृष्टांत सौप्रतिशत लागू नहीं होता, एक अंश ही लेना है ''दूसरों का बन्धन'' सारे अंश में नहीं लेना, अपना बन्धन यहाँ नहीं कहना चाहते अथवा ऐसे भी कह सकते हैं कि प्रकृति का जो आत्मभूत है वह पुरुष का आत्मभूत है (जैसे मक्ाी है, मकडी के अंदर आत्मा है वह फंसा हुआ है ''मकडी के शरीर ने मकडी के आत्मा को बांध लिया'') ऐसे ही शरीर को प्रकृति समझें उसने आत्मा को बांध लिया ।**[पुनः (एकेन रूपेण विमोचयति) एकेन रूपेण स्वरूपभूतेन प्रकृतिरूपेण सृष्टिनिवर्तनेन विमोचयति]** एक रूप से अपने स्वरूप से जीवात्मा को प्रकृति छोड़ देती है, जब उसकी सृष्टि निवृत्ति हो जाती है।**[बन्धस्तु खलु पुरुषस्यैव सोऽविवेकात्]** बन्धन तो जीवात्मा का ही होता है वह अविवेक के कारण, **[विवेकाविवेकौ पुरुषाधिष्ठानकौ]** विवेक और अविवेक पुरुष में रहते हैं, **[पूर्वस्मिन्नस्मिंश्च सूत्रे प्रकृतेर्बन्धमोक्षकथनमन्यभाष्यकारप्रलपनमेंव]** पूर्वसूत्र और इस सूत्र में प्रकृति का बन्धन और मोक्ष कहना ये अन्य भाष्यकारों ने गड़बड़ कर रखी है (वो कहते है

तत्र बन्धमोक्षयोर्विवेकाविवेकप्रकारः प्रदर्श्यते -

रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद्॒ विमोचयत्येकेन रूपेण ।।७३।।

(प्रधानं सप्तभिः-रूपैः-आत्मानं बध्नाति) महत्तत्त्वाहंकारपञ्चतन्मात्रैः सप्तभिरवस्थान्तरभूतैर्विकृतिरूपैर्जीवात्मानं बध्नाति यतस्तत एव सान्तःकरणमुभयमिन्द्रियं निष्पद्यते। उच्यते हि''प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात्पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियम्''(सांख्य० १.६१) कथमिव (कोशकारवत्) कोशकार इव तन्तुकीट इव यथा तन्तुकीटस्तन्तुर्भिबध्नाति, दृष्टान्तस्यैक एवांशोऽत्र बन्धनमेवाभिप्रेयते न सर्वांशत्वं स्वबन्धनमपि यद्वा प्रकृतेरात्मभूतः पुरुषस्तमात्मभूतं प्रकृतिर्बध्नाति। पुनः (एकेन रूपेण विमोचयति) एकेन रूपेण स्वरूपभूतेन प्रकृतिरूपेण सृष्टिनिवर्तनेन विमोचयति। बन्धस्तु खलु पुरुषस्यैव सोऽविवेकात्, विवेकाविवेकौ पुरुषाधिष्ठानकौ, पूर्वस्मिन्नस्मिंश्च सूत्रे प्रकृतेर्बन्धमोक्षकथनमन्यभाष्यकारप्रलपनमेव ।बहुभिः सूत्रैः सिध्यति हि पुरुषस्य हि बन्धः स चाविवेकात् प्रकृति का बन्धन भी होता है मोक्ष भी, जबकि जड का कैसा बन्धन और कैसा मोक्ष? क्योंकि वह तो अनुभूति रहित है जड़ है)।[**बहुभिः सूत्रैः सिध्यति हि पुरुषस्य हि बन्धः स चाविवेकात् सति विवेके मोक्षः**] बहुत सारे सूत्रों से ये सिद्ध होता है कि पुरुष का ही बन्धन होता है और वह अविवेक के कारण तथा विवेक हो जाने पर उसका मोक्ष हो जाता है (बन्धन और मोक्ष पुरुष का होता है न कि प्रकृति का)।।७३।।

[**कथमुच्यते सप्तभिर्महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्रैर्बन्धः पूर्वं तु खल्वविवेक एव बन्धकारणमुक्तं ''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'' (यजु० ३१.१८) इति दृष्टकारणस्य हानिर्भवेदत्रोच्यते -**] एक शंका हुई?- पिछले सूत्र में कहा कि प्रकृति सात रूपों से बांधती है, महतत्व अहंकार आदि इन सात रूपों से जीवात्मा का बन्धन है ।जबकि पहले तो आपने एक ही कारण बताया था अविवेक।''परमात्मा को जानकर ही व्यक्ति मृत्यु को पार होता है'', पूर्वपक्षी कहता है कि ऐसा आप कहेंगे तो दृष्ट कारण कि तो हानी हो जाएगी? इस विषय में उत्तर देते हैं-

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ।।७४।।

सूत्रार्थ= महतत्व आदि सात रूपों से जीव को बांधने में अविवेक ही कारण है, इसलिए इस साक्षात कारण का कोई विरोध नहीं है।

[**(अविवेकस्य निमित्तत्वम्) तत्र महत्तत्त्वादौ खल्वविवेकस्य निमित्तत्वमस्ति, अविवेकस्तत्र निमित्तम्**] सिद्धांती कहता है- पिछले सूत्र में जो कहा कि महतत्व, अहंकार आदि सात पदार्थ जीवात्मा को बांध लेते हैं, ये सात रूपों से जीवात्मा को क्यों बांध लेती है प्रकृति ।इसमें पिछले सूत्रों में जो कारण बताया गया वह अविवेक है, इसलिए कोई टकराव नहीं (अविवेक भी ठीक है सात पदार्थ भी ठीक हैं) अविवेक वहाँ निमित्त है, [**अविवेकयुक्तं हि महत्तत्त्वादिभिर्बध्नाति प्रकृतिः**] जिस जीवात्मा में अविवेक है उस जीवात्मा को ही प्रकृति अपने सात रूपों में बांधेगी, जिसमें अविवेक का कारण नहीं है प्रकृति उसे नहीं बांधेगी [**(दृष्टहानि-न) दृष्टस्य साक्षाद्भूतस्य कारणस्य बन्धकारणस्य न हानिः**] इसलिए दृष्ट कारण जो साक्षात दिख रहा है अविवेक। उस कारण कि कोई हानी नहीं है, [**यतः साक्षान्निमित्तं तु बन्धस्याविवेक एव**] इसलिए सीधा सीधा बन्धन का कारण अविवेक ही है, [**अविवेकनिमित्तादेव पुरुषस्य प्रवृत्तिरतश्च**

सति विवेके मोक्षः ।।७३।।

कथमुच्यते सप्तभिर्महत्तत्त्वाहंकारतन्मात्रैर्बन्धः पूर्वं तु खल्वविवेक एव बन्धकारणमुक्तं ''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति'' (यजु० ३१.१८) इति दृष्टकारणस्य हानिर्भवेदत्रोच्यते -

निमित्तत्वमविवेकस्य न दृष्टहानिः ।।७४।।

(अविवेकस्य निमित्तत्वम्) तत्र महत्तत्त्वादौ खल्वविवेकस्य निमित्तत्वमस्ति, अविवेकस्तत्र निमित्तम्, अविवेकयुक्तं हि महत्तत्त्वादिभिर्बध्नाति प्रकृतिः (दृष्टहानि-न) दृष्टस्य साक्षाद्भूतस्य कारणस्य बन्धकारणस्य न हानिः, यतः साक्षान्निमित्तं तु बन्धस्याविवेक एव, अविवेकनिमित्तादेव पुरुषस्य प्रवृत्तिरतश्च महत्तत्त्वादिसृष्टिः ।।७४।।

अविवेको बन्धस्य निमित्तं तन्निवृत्तिर्विवेकाद्भवति, विवेकसिद्धेः क उपाय इत्याकांक्षायामुच्यते

महत्तत्त्वादिसृष्टिः] अविवेक के कारण ही पुरुष कि भोगों में प्रवृति होती है, फिर उस भोग को भुगवाने के लिए उसे महतत्व आदि दिए जाते हैं।।७४।।

[अविवेको बन्धस्य निमित्तं तन्निवृत्तिर्विवेकाद्भवति, विवेकसिद्धेः क उपाय इत्याकांक्षायामुच्यते-] बन्ध का निमित्त कारण अविवेक समझ में आ गया, उसकी निवृत्ति होती है विवेक से। इस विवेक प्राप्ति का क्या उपाय है? इस पर कहते है-

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद् विवेकसिद्धिः।।७५।।

सूत्रार्थ= ईश्वर का चिंतन करने से और भौतिक वस्तुओं से मेरा उद्देश्य पूर्ण नहीं होगा इनसे ईश्वरीय आनन्द नहीं मिलेगा, इस प्रकार सोचकर इनको छोडते जाने से विवेक कि सिद्धि हो जाती है।

[(तत्त्वाभ्यासात्) तत्त्वचिन्तनादात्मपरमात्मचिन्तनात्] तत्व का अभ्यास करने से आत्मा-परमात्मा का चिंतन करने से। **[कथमित्युच्यते]** कैसे चिंतन करें **[(न-इति न-इति-इति त्यागात्) यद् यद् वस्तु केनापि साधनेन मनसाऽपि वाऽनुभूतं भवेत्तेन तन्नेति नेति तत्त्वमात्मतत्त्वं परमात्मतत्त्वमिति त्यागप्रकारात् (विवेकसिद्धिः) विवेकस्यात्मनः परमात्मनः स्वात्मनि साक्षात्कारसिद्धिर्भवति]** जो जो वस्तु किसी साधन से अथवा मन में आती है उस साधन से उस वस्तु के विषय में ये विचारें वह वस्तु ईश्वर नहीं है, परमात्मा नहीं है इस प्रकार से उन वस्तुओं का त्याग करते जाएंगे, इस त्याग कि पद्धति से, जो आत्मा परमात्मा का विवेक है तत्वज्ञान है उसका आत्मा के भीतर साक्षात्कार हो जाएगा। **[उच्यते यथा ''अथात आदेश नेति नेति नह्येतस्मादति नेत्यन्यत् परमस्ति'' (बृह० २.३.६) ''स एष आत्मा नेति नेति'' (बृह० ३.९.२६)]** जैसा कि उपनिषद में कहा है-अब यही तुम्हारे लिए आदेश है उपदेश है सार यही है कि ये भी परमात्मा नहीं है ये भी नहीं है, इससे (भौतिक वस्तुओं से) हमारा कल्याण नहीं होगा, परमात्मा इन सबसे अलग है। फिर दूसरे उपदेश में कहा -जैसा हमने परमात्मा बताया (निराकार सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक) इतना ही परमात्मा को मत मान लेना वह इतना ही नहीं है बल्कि बहुत कुछ है पूरा पूरा हम भी नहीं बता सकते ।।७५।।

-

तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद् विवेकसिद्धिः ।।७५।।

(तत्त्वाभ्यासात्) तत्त्वचिन्तनादात्मपरमात्मचिन्तनात् । कथमित्युच्यते (न-इति न-इति-इति त्यागात्) यद् यद् वस्तु केनापि साधनेन मनसाऽपि वाऽनुभूतं भवेत्तेन तन्नेति नेति तत्त्वमात्मतत्त्वं परमात्मतत्त्वमिति त्यागप्रकारात् (विवेकसिद्धिः) विवेकस्यात्मनः परमात्मनः स्वात्मनि साक्षात्कारसिद्धिर्भवति । उच्यते यथा ''अथात आदेश नेति नेति नह्येतस्मादति नेत्यन्यत् परमस्ति'' (बृह०२.३.६) ''स एष आत्मा नेति नेति'' (बृह० ३.९.२६) ।।७५।।

सा च विवेकसिद्धिर्न सर्वेषां समानेत्युच्यते -

[सा च विवेकसिद्धिर्न सर्वेषां समानेत्युच्यते -] और यह विवेक सिद्धि सबको एक समान तथा एक साथ नहीं होती, इस पर कहते हैं-

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः।।७६।।

सूत्रार्थ= तत्वज्ञान प्राप्ति के अधिकारी भिन्न-भिन्न स्तर वाले होने से सबको समान मात्रा में विवेक नहीं होता है।

[(अधिकारिप्रभेदात्-न नियमः) अधिकारिणां विवेकाभ्यासिनां प्रभेदात् सर्वेषां विवेकसिद्धिसमानत्वस्य नियमो नास्ति] जो अधिकारी है (जो तत्वज्ञान के लिए प्रयास कर रहे हैं) उन अधिकारियों के अलग-अलग स्तर होने से, सभीअधिकारियों की विवेक प्राप्ति की समानता का कोई नियम नहीं है, **[न हि सर्वेषां विवेकः समानो भवति यतः सन्ति ह्यधिकारिणो मृदुमध्याधिमात्राः]** सभी का विवेक का स्तर समान नहीं होता क्योंकि वे तीन स्तर वाले होते हैं मृदु (कम गति वाले), मध्य (मध्यम गति वाले), अधिमात्र (तेज गति से चलने वाले)। **उक्तं हि योगदर्शने ''मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः'' (योग० १.२२)** योगदर्शन में भी कहा है इसी बात को - मृदु, मध्य, अधिमात्र तीन प्रकार के स्तर वाले होने से जो तीव्रगाती वाले होंगे उनको पहले विवेक की प्राप्ति होगी।।७६।।

अतएव -

बाधितानुवृत्तेर्मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ।।७७।।

सूत्रार्थ= मध्य (जीवनमुक्त) अधिमात्र (नितांतमुक्त) जिस जीवन मुक्त व्यक्ति ने अपने ज्ञान और वैराग्य से राग-द्वेष आदि क्लेशों को समाप्त कर दिया है उसे भी शरीर के रहने तक तात्कालिक भोग भोजन आदि करना पड़ेगा।

[(मध्यविवेकतः-बाधितानुवृत्तेः-अपि-उपभोगः) मध्यविवेकाद् (जीवनमुक्त) बाधिता या खल्वनुवृत्तिरनुरक्तिरनुरागरूपा प्रवृत्तिर्येनाभ्यासिना तस्यापि विवेकाभ्यासिनो भवत्युपभोगस्तात्कालिको यावत्प्रारब्धभोगसमाप्तिः] मध्य विवेक से जिसने अनुवृति अर्थात अनुराग रूपी प्रवृति (जो भोगों में आसक्ति है) समाप्त कर दी जिस व्यक्ति के द्वारा। उस व्यक्ति का तात्कालिक उपभोग जो पिछले जन्मों का प्रारब्ध रूपी भोग है वह चलता रहता है। **[अधिमात्रविवेकस्य तु सर्वथा भोगाभावो भवति]** जिसका शरीर छूट गया जो

अधिकारिप्रभेदान्न नियमः ।।७६।।

(अधिकारिप्रभेदात्-न नियमः) अधिकारिणां विवेकाभ्यासिनां प्रभेदात् सर्वेषां विवेकसिद्धिसमानत्वस्य नियमो नास्ति, न हि सर्वेषां विवेकः समानो भवति यतः सन्ति ह्यधिकारिणो मृदुमध्याधिमात्राः । उक्तं हि योगदर्शने ''मृदुमध्याधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः'' (योग० १.२२) ।।७६।।

अतएव -

बाधितानुवृत्तेर्मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः ।।७७।।

(मध्यविवेकतः-बाधितानुवृत्तेः-अपि-उपभोगः) मध्यविवेकाद् बाधिता या खल्वनुवृत्तिरनुरक्तिरनुरागरूपा प्रवृत्तिर्येनाभ्यासिना तस्यापि विवेकाभ्यासिनो भवत्युपभोगस्तात्कालिको यावत्प्रारब्धभोगसमाप्तिः । अधिमात्रविवेकस्य तु सर्वथा भोगाभावो भवति । अथवा (मध्यविवेकतः अपि-उपभोगः-बाधितानुवृत्तेः) मध्यविवेकतोऽपि भवत्युपभोगो बाधितानां विवेकाभ्यासान्निवारितानां विषयाणामनुवृत्तेरनुवर्तमानत्वात् तेऽनुवर्तन्ते शरीरमनुवर्तन्ते हि विषया यावच्छरीरं तस्यापि मध्यविवेकिनः,

---

मोक्ष में चला गया है ऐसे अधिमात्र विवेकी का सर्वथा भोगों का अभाव हो जाएगा। अब दूसरी व्याख्या करते हैं [**अथवा (मध्यविवेकतः अपि-उपभोगः-बाधितानुवृत्तेः) मध्यविवेकतोऽपि भवत्युपभोगो बाधितानां विवेकाभ्यासान्निवारितानां विषयाणामनुवृत्तेरनुवर्तमानत्वात् तेऽनुवर्तन्ते शरीरमनुवर्तन्ते हि विषया यावच्छरीरं तस्यापि मध्यविवेकिनः**] मध्य विवेक से भी उपभोग होता रहता है तत्वज्ञान विवेक के अभ्यास से जिन विषयों का निवारण कर दिया गया है उन विषयों की अनुवृति होने से रूप रस गंध आदि विषयों का सेवन शरीर होने के कारण चलता रहता है, जब तक उस विवेकी का शरीर रहेगा तबतक, [**नष्टेन शरीरेण सहैव तेऽपि नक्ष्यन्ति हि**] जब उस विवेकी का शरीर नष्ट हो जाएगा तव उस विवेकी के शरीर के नाश के साथ साथ विषय भी नष्ट हो जाते हैं।।७७।।

जीवन्मुक्तश्च ।।७८।।

सूत्रार्थ= वह मध्य विवेकी व्यक्ति जीवन मुक्त कहलाता है।

[**(जीवन्मुक्तः-च) जीवन्मुक्तश्च स मध्यविवेकी भवति**] मध्य विवेकी ही जीवन मुक्त होता है, [**तदा च स जीवन्मुक्तोऽभिधीयते**] तब वह जीवन मुक्त नाम से कहा जाता है [**''आत्मानं चेद् विजानीयादयस्मीति पुरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्'' (बृह० ४.४.१२)**] यदि व्यक्ति अपनी आत्मा को जान लेवे की मैं जीवात्मा हूँ। फिर किस चीज की इच्छा करके (किसी वस्तु की कामना करके) व्यक्ति इस शरीर को धारण करे।।७८।।

जीवन्मुक्तसिद्धौ युक्तिमाह - जीवन मुक्त व्यक्ति कैसे बनेगा? इसके लिए युक्ति बताते हैं-

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ।।७९।।

सूत्रार्थ= विवेकार्थी शिष्य और विवेक उपदेष्टा गुरु के होने पर जीवन मुक्त व्यक्ति बनता है।

नष्टेन शरीरेण सहैव तेऽपि नक्ष्यन्ति हि ।।७७।।

जीवन्मुक्तश्च ।।७८।।

(जीवन्मुक्तः-च) जीवन्मुक्तश्च स मध्यविवेकी भवति, तदा च स जीवन्मुक्तोऽभिधीयते ''आत्मानं चेद्‌ विजानीयादयस्मीति पुरुषः । किमिच्छन् कस्य कामाय शरीरमनुसंज्वरेत्'' (बृह० ४.४.१२) ।।७८।।

जीवन्मुक्तसिद्धौ युक्तिमाह -

उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः ।।७९।।

(उपदेश्योपदेष्टृत्वात्) विवेकार्थो खलूपदेश्यस्तस्य विवेकार्थिन उपदेश्यस्य विवेकोपेष्टा भवितव्यमेव तस्मात् (तत्सिद्धिः) तस्य जीवन्मुक्तस्य विवेकसम्पन्नस्य सिद्धिस्तस्यास्तित्वसिद्धिर्भवति ।।७९।।

अत्र खलु -

[(उपदेश्योपदेष्टृत्वात्) विवेकार्थो खलूपदेश्यस्तस्य विवेकार्थिन उपदेश्यस्य विवेकोपेष्टा भवितव्यमेव तस्मात् (तत्सिद्धिः) तस्य जीवन्मुक्तस्य विवेकसम्पन्नस्य सिद्धिस्तस्यास्तित्वसिद्धिर्भवति] सूत्र में दो शब्द है एक है- उपदेस्य दूसरा है- उपदेष्ट। उपदेस्य का अर्थ है जो उपदेश गृहण करने वाला है ''विवेकार्थी'', उस विवेकार्थी का कोई न कोई उपदेष्टा होना चाहिए, इसलिए जब विद्यार्थी अच्छा हो और उपदेशक भी अच्छा हो तब उस जीवन मुक्त विवेक सम्पन्न व्यक्ति की विवेक सिद्धि और अस्तित्व की सिद्धि होगी ।।७९।।

अत्र खलु -

श्रुतिश्च ।।८०।।

सूत्रार्थ= जीवन मुक्त व्यक्ति की उत्पत्ति में योगी गुरु की आवश्यकता है, इसमें श्रुति और स्मृति का भी प्रमाण है।

[(श्रुतिः-च) अस्मिन् विषये जीवन्मुक्तविषये श्रुतिरेवास्तीति न किन्तु श्रुतिश्च चकारात्स्मृतिश्च प्रमाणमस्ति] इस विषय में केवल युक्ति ही नहीं है किन्तु प्रमाण भी है श्रुति और स्मृति दोनों का प्रमाण है। **[''समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्'']** जब हाथ में समिधा लेकर के वेद को पड़ाने वाले विद्वान के पास जाता था जो ब्रह्मनिष्ठ है ऐसे गुरुजनों के पास विद्यार्थी पड़ने जाते थे **[(मुण्ड० १.२.१२) ''द्विविधश्चित्तनाशोऽस्ति सरूपोऽरूप एव च । जीवन्मुक्तः सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः।'']** चित्त का नाश दो प्रकार का है एक रूप सहित दूसरा रूप रहित। जीवन मुक्त व्यक्ति चित्त का रूप बना हुआ क्लेश नष्ट हो गए वह रूप सहित है, अरूप वह होगा जब जीवात्मा देह से छुट जाएगा पूर्ण मोक्ष को प्राप्त हो जाएगा, तब यह

श्रुतिश्च ।।८०।।

(श्रुतिः-च) अस्मिन् विषये जीवन्मुक्तविषये युक्तिरेवास्तीति न किन्तु श्रुतिश्च चकारात्स्मृतिश्च प्रमाणमस्ति ।''समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्''(मुण्ड० १.२.१२)''द्विविधश्चित्तनाशोऽति सरूपोऽरूप एव च ।जीवन्मुक्तः सरूपः स्यादरूपो देहमुक्तिगः ।''(मुण्डको० २.३२)''आत्मकल्पेन वा व्यवतिष्ठते प्रलयं वाधिगच्छति''(योग० व्यासः)''जीवन्नेव विद्वान् हर्षामर्षाभ्यां विमुच्यते'' इत्यनिरुद्धः ।।८०।।

लोकदृष्ट्या जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः सूच्यते -

इतरथाऽन्धपरम्परा ।।८१।।

(इतरथा) अन्यथा यद्येतादृशो जीवन्मुक्त उपदेष्टा न भवेत्-तर्हि (अन्धपरम्परा) अन्धपरम्पराऽविवेकस्य परम्परा प्रसज्येत नहि कस्यापि विवेको जायेत, तस्माज्जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः ।।८१।।

चित्त भी पूर्णत:नष्ट हो जाएगा।। [**(मुण्डको० २.३२)''आत्मकल्पेन वा व्यवतिष्ठते प्रलयं वाधिगच्छति''**] यहाँ भी दो प्रकार का चित्त बताया है- एक तो आत्मा के समान शुद्ध (जब जीवात्मा समाधि लगता है उसके रागद्वेष समाप्त हो जाते हैं) अथवा (दूसरा) जब प्रलय होता है तब योगी का शरीर छूटता है। [**(योग० व्यासः)''जीवन्नेव विद्वान् हर्षामर्षाभ्यां विमुच्यते'' इत्यनिरुद्धः**] अनिरुद्ध ने ये वचन उद्धृत किया है- वो विद्वान जीते जी ही हर्ष (खुशी) और अमर्ष (दुख) से विमुक्त हो जाता है ।।८०।।

लोकदृष्ट्या जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः सूच्यते - लौकिक दृष्टि से जीवन मुक्त व्यक्ति की सिद्धि बतलाते हैं-

इतरथाऽन्धपरम्परा ।।८१।।

सूत्रार्थ= योग्य गुरु के अभाव में अंधपरम्परा चलती है।

[**(इतरथा) अन्यथा यद्येतादृशो जीवन्मुक्त उपदेष्टा न भवेत्-तर्हि (अन्धपरम्परा) अन्धपरम्पराऽविवेकस्य परम्परा प्रसज्येत नहि कस्यापि विवेको जायेत**] यदि इस प्रकार का उपदेष्टा न होवे तब अंधपरम्परा अविवेक की परंपरा आरंभ हो जाएगी, ऐसी स्थिति में किसी को भी तत्वज्ञान नहीं होगा, **तस्माज्जीवन्मुक्तस्य सिद्धिः** इसलिए जीवन मुक्त की सत्ता है।।८१।।

[**स जीवन्मुक्तो विवेकसम्पन्नोऽपि कथं शरीरं धत्तेऽविवेकक्षये तु शरीराद् विमुच्येत। अत्रोच्यते-**] वह जीवन मुक्त व्यक्ति जो विवेक सम्पन्न हो गया फिर वह क्यों शरीर को धारण कर रहा है अविवेक के हट जाने पर तो शरीर से छुट जाना चाहिए। इस विषय पर कहते हैं-

चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः ।।८२।।

सूत्रार्थ= जीवन मुक्त व्यक्ति मृत्यु आने तक शरीर को धरण किए रहता है, कुम्हार के घूमते हुए चक्र के समान।

स जीवन्मुक्तो विवेकसम्पन्नोऽपि कथं शरीरं धत्तेऽविवेकक्षये तु शरीराद् विमुच्येत । अत्रोच्यते –

चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः ।।८२।।

(चक्रभ्रमणवत्-धृतशरीरः) यथा कुम्भकारस्य चक्रं दण्डेन भ्रामितं सत् तस्य भ्रमणनिमित्तभूतदण्डापगमेऽपि चक्रभ्रमणं भवति हि-कञ्चित् कालं भ्रमच्चक्रं दृश्यते ह्यवशिष्टवेगतो यद्वा वेगलेशतः, तथैव स जीवन्मुक्तोऽपि धृतशरीरः सशरीरस्तिष्ठति । उक्तं च "दीक्षयैव नरो मुच्येत् तिष्ठेन्मुक्तोऽपि विग्रहे । कुलालचक्रमध्यस्थो विच्छिन्नोऽपि भ्रमेद् घटः ।। "अशुक्लकृष्मा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति" (योग0 ४.७० व्यास०) ।।८२।।

तस्मात् –

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।।८३।।

[(चक्रभ्रमणवत्-धृतशरीरः) यथा कुम्भकारस्य चक्रं दण्डेन भ्रामितं सत् तस्य भ्रमणनिमित्तभूतदण्डापगमेंऽपि चक्रभ्रमणं भवति] जैसे कुम्हार चक्र (चाक) दण्ड के द्वारा घुमा दिया गया हो और चाक को घूमने के बाद दण्ड को उससे हटा लिया जाता है चाक घूमता रहता है **[हि-कञ्चित् कालं भ्रमच्चक्रं दृश्यते ह्यवशिष्टवेगतो यद्वा वेगलेशतः]** कुछ काल तक तो वह चाक घूमता रहता दिखाई देता है, वेग के कारण वह घूमता है, **[तथैव स जीवन्मुक्तोऽपि धृतशरीरः सशरीरस्तिष्ठति]** उसी प्रकार से जीवन मुक्त व्यक्ति भी शरीर को धारण किए रहता है (उसके अंदर भी जीवन धरण का वेग पिछले कर्मों के कारण है इसलिए जब तक वेग रहेगा तब तक शरीर रहेगा)।**[उक्तं च "दीक्षयैव नरो मुच्येत् तिष्ठेन्मुक्तोऽपि विग्रहे । कुलालचक्रमध्यस्थो विच्छिन्नोऽपि भ्रमेद् घटः]** और कहा है- दीक्षा से ही मनुष्य मुक्ति को प्राप्त होता है, सब क्लेशों से मुक्त रहते हुए भी आत्मा शरीर के अंदर रहता है। जैसे कुमार के चक्र के बीच में से काट देने पर भी घड़ा घूमता रहता है ।।**["अशुक्लकृष्णा संन्यासिनां क्षीणक्लेशानां चरमदेहानामिति" (योग० ४.७० व्यास०)]** अशुक्लकृष्ण जो कर्म जाति है वह सन्यासियों की होती है जिनके क्लेश समाप्त हो चुके हैं जो अंतिम शरीर वाले हैं ।।८२।।

तस्मात् –

संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः ।।८३।।

सूत्रार्थ= उस जीवन मुक्त व्यक्ति के कर्मफल (संस्कार) बचे हुए होने से कुछ समय के लिए उसे शरीर धारण किए रखना पड़ता है।

[(संस्कारलेशतः-तत्सिद्धि) संस्कारलेशतः कृतकर्मभोगरूपविषयाणां संस्कारलेशात् संस्काराभासात् तस्य जीवन्मुक्तस्य शरीरधारणसिद्धिः] संस्कार लेश के कारण किए हुए कर्म का भोग रूपी जो संस्कार बचा हुआ है उस संस्कार के आभास से उस जीवन मुक्त का शरीर धारण होता है।।८३।।

वस्तुतः –

(संस्कारलेशतः-तत्सिद्धि) संस्कारलेशतः कृतकर्मभोगरूपविषयाणां संस्कारलेशात् संस्काराभासात् तस्य जीवन्मुक्तस्य शरीरधारणसिद्धिः ।।८३।।

वस्तुतः -

विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नतरान्नेतरात् ।।८४।।

(विवेकात्-निशेषदुःखनिवृत्तौ) पूर्णविवेकात् खलु समस्तदुःखनिवृत्तिर्भवति, तदैव (कृतकृत्यः पुरुषः कृतकृत्यो भवति (इतरात्-न) भिन्नात् विवेकभिन्नात् केवलकर्मणो नेत्यर्थः । नेतरात् द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था ।।८४।।

सांख्यदर्शने समाप्तस्तृतीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः ।

विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यो नतरान्नेतरात् ।।८४।।

सूत्रार्थ=पूर्ण विवेक से शरीर छूट जाने पर सम्पूर्ण दुःखों की निवृति होने पर जीवात्मा पूर्णतया सफल होता है, केवल सकाम कर्म करने से पूर्ण सफलता नहीं मिलती।

[**(विवेकात्-निशेषदुःखनिवृत्तौ) पूर्णविवेकात् खलु समस्तदुःखनिवृत्तिर्भवति**] पूर्ण विवेक की प्राप्ति से ही व्यक्ति समस्त दुःखों से छूट पाता है, तदैव [**(कृतकृत्यः पुरुषः कृतकृत्यो भवति**] उस समय ही जीवात्मा कृत कृत्य होता है [**(इतरात्-न) भिन्नात् विवेकभिन्नात् केवलकर्मणो नेत्यर्थः**] और इस विवेक से जो भिन्न उपाय है केवल कर्म से जीवात्मा का पूरा मोक्ष नहींहोगा। [**नेतरात् द्विरुक्तिरध्यायसमाप्त्यर्था**] सूत्र में ये शब्द दो बार कहा है "नेतरात" दूसरी बार जो कथन है वह अध्याय की समाप्ति के लिए है ।।८४।।

सांख्यदर्शने समाप्तस्तृतीयोऽध्यायः स्वामिब्रह्ममुनिभाष्योपेतः।

